निवेदन

टना के मंच से पुरी के स्वामी शंकराचार्य के
ा और हिंदू-संस्कृति में शूद्रता और अस्पृश्यता
विरुद्ध कहकर कोलाहल मच गया। इसी तरह
ा और सार्वजनिक विकास-मंत्री (अब सुरक्षा
रामजी के यह कह देने पर कि वैदिक-युग में
पार्लमिंट में हंगामा मच गया। किन्तु ये दोनो
रित हैं।

... ... पुस्तक में, जो कि मेरा प्रथम प्रयास है, मैंने वैदिक युग से लेकर अब तक प्रचलित आर्यों की नीति और प्रथाओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। इसके पढ़ने से पाठकों के सामने वह तस्वीर खिच जायगी कि आगंतुक आर्यों ने किस तरह इस देश के भोले-भाले, सीधे और निश्छल प्राचीन निवासियों को अपना दास और गुलाम बनाया। आर्यों की ये प्रथाएँ इतनी घृणित और अन्याय-पूर्ण हैं कि आज का सभ्य-समाज इन्हें पढ़कर चौंक पड़ेगा। किन्तु वैदिक या ब्राह्मणी हिन्दू-शास्त्र इन्हें काव्यालंकार-पूर्ण भाषा में, आज भी सुरक्षित रखे हुए हैं। आर्य-ऋषियों के उत्तराधिकारी ब्राह्मण इनमें एक अनुस्वार का भी परिवर्तन करना नहीं चाहते। क्योंकि वे अपने पूर्वजों को अभ्रांत और त्रिकाल-दर्शी मानते हैं, और कहते हैं, उन पर हमारा अन्ध-विश्वास है। अतएव उसका निरंतर संगायन करते रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो उद्धरण दिये गये हैं, सब सही हैं। उनके अंकों के देने और लिखने में अशुद्धियाँ हो सकती हैं। पाठक उनका केवल आशय ग्रहण करेंगे।

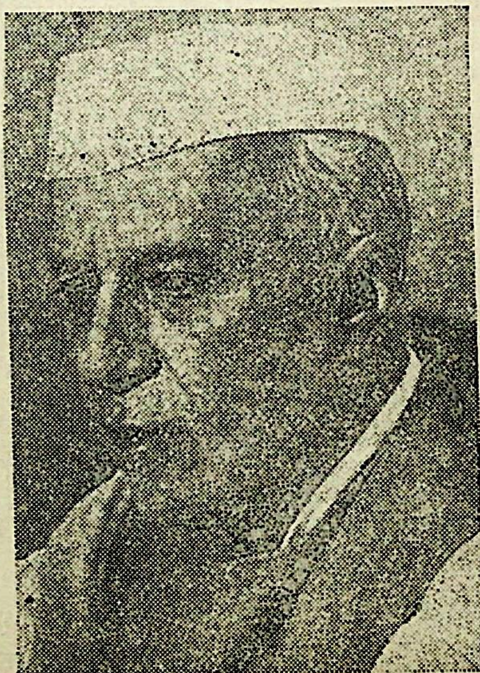
अन्त में, मैं वयोवृद्ध, समाज-तत्त्व-दर्शी श्रद्धेय श्री जिज्ञासुजी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने मेरी इस कृति को सँवारकर सुप्रसिद्ध बहुजन-कल्याण-माला का एक सुमन बना दिया।

५ अप्रैल, १९६९]

—गजाधरप्रसाद शर्मा

भारत में वैदिक आर्य ईरान से आये

स्व० प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रसिद्ध ग्रंथ "डिस्कवरी आफ इंडिया (हिंदुस्तान की कहानी) में लिखा है कि वैदिक आर्य, जिनके प्रमुख उत्तराधिकारी ब्राह्मण हैं, यहाँ ईरान से आये। पं० नेहरू ने लिखा है—



"भारतीय आर्य और ईरानी अलग होकर अपना-अपना रास्ता लेने से पहले एक ही नस्ल के थे। जाति की दृष्टि से तो दोनो एक थे ही परंतु उनके पुराने धर्म और भाषा में भी एकसा-नियत है। वैदिक और जरथुस्त धर्म में बहुत-सी बातें एक-सी हैं और वेद तथा अवेस्ता दोनो एक-दूसरे से मिलती-जुलती हैं। बाद में संस्कृत और फारसी के विकास अलग-अलग हुए हैं, लेकिन दोनो के बहुत से मूल शब्द एक ही हैं। दोनो भाषाओं पर उनकी कला और संस्कृति का उनके जुदा-जुदा वातावरण का प्रभाव पड़ा है। जिस तरह फारसी कला का ईरान की मिट्टी और प्राकृतिक दृश्यों से मौलिक संबंध दिखाई देता है- उसी तरह भारतीय आर्यों की कला-परंपरा बर्फ से ढके पहाड़ों, हरे-भरे जंगलों और उत्तरी हिंदुस्तान की बड़ी नदियों से पैदा हुई है। अवेस्ता में हिंदुस्तान का जिक्र आया है और उत्तरी हिंदुस्तान का कुछ बयान भी, इसी तरह ऋग्वेद में फारस के हवाले हैं। फारसी लोग पार्श्व कहलाते थे, और बाद में यही पारसीक कहलाने लगे, इस तरह ईरान और हिंदुस्तान के दरमियान आपसी दिलचस्पी की परंपरा पुरानी है, और असीरियन वंश के जमाने से पहले की।" (पृ० १६३)

आर्य-नीति का भंडाफोड़

पहला अध्याय

नारी-जाति की दासता, नियोग और व्यभिचार

नियोग की धर्म-प्रथा चलाने में आर्य-व्यवस्थापकों की नीति, केवल आर्यों की संख्या बढ़ाकर देश पर छा जाना मात्र ही न थी, वरन् आर्य-ऋषियों, ब्राह्मणों और आर्य-राजाओं की काम-पिपासा और विषय-भोग-लिप्सा की तृप्ति के लिए साधन सुलभ कर लेना भी था। अतः उन्होंने इन सब कुकर्मों को धर्म-विधान के रूप में प्रचारित किया ताकि जनता इन्हें धर्मशास्त्रों की आज्ञा समझे। इस पुस्तक में एवं इस अध्याय में हिन्दू शास्त्रों से संकलित करके जो उद्धरण दिये गये हैं, उन्हें पढ़ने और उन पर विचार करने से पाठकों को इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ेगा।

मनुस्मृति (६-७६ तथा १-८१) में लिखा है।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टो नरः समाः।
विद्यार्थं षडः यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान ॥
वंध्याष्टमेऽधि वेद्याब्दे दशमे तु मृत प्रजा।
× एकादशे स्त्री जननी सद्यसत्व प्रिय वादिनी ॥

अर्थ—शादी-शुदा पति धर्म के लिए परदेश गया हो, तो स्त्री आठ साल तक प्रतीक्षा करे, यश या कीर्ति के लिए गया हो, तो सात साल, धनोपार्जन के लिए गया हो, तो तीन साल तक प्रतीक्षा करके स्त्री को नियोग कराकर संतान उत्पन्न कर लेना चाहिए और जब पति वापस आये, तब नियुक्त पुरुष को त्याग देना

चाहिए, इसी तरह यदि पति दुखदायी हो तो स्त्री पति को छोड़ कर अन्य पुरुष से नियोग कराये।

अन्यमिच्छस्व, सुभगे पति मत
(ऋग्वेद मंत्र १०, सूत्र १०, मंत्र १०)

अर्थ—यदि पति संतान पैदा करने में असमर्थ हो, तो अपनी पत्नी को आज्ञा देकर दूसरे पुरुष से संतान पैदा करा सकता है।

इन प्रमाणों से साफ सिद्ध है कि हिन्दू शास्त्रों में पर पुरुष से बच्चे पैदा कराने का विधान है और इसी को "नियोग-प्रथा" कहते हैं। सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए संतान की आवश्यकता रहती है। किंतु यदि उत्तराधिकारी नहीं है, तो वह संपत्ति लोकहित और लोककल्याण में क्यों नहीं लगायी जा सकती? इस भावना के विरुद्ध दो बातें काम करती हैं: एक है जाति-भेद, वंश-भेद और वर्ग-भेद, दूसरी है गुरुओं की संभोग सुलभता अथवा पर-स्त्री-गमन और व्यभिचार की भावना तथा नारी-जाति की विवशता। इस सम्बन्ध में नीचे जो उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं, उनसे यह बात पाठकों की समझ में आ जायगी।

इनमें सबसे बड़ा उदाहरण 'रघुपति राघव राजाराम' का है। राजा दशरथ बूढ़े और संतानोत्पादन में असमर्थ हो गये थे। उनके कोई संतान नहीं थी। उन्होंने अपने कुल-पुरोहित वशिष्ठजी से अपने मन की ग्लानि कही। वशिष्ठजी ने पुत्रेष्टि यज्ञ करने की सलाह दी और इस काम के लिए शृंगी-ऋषि को बुलाया। शृंगी-ऋषि ऐसे युवक थे जिन्हें पूरे जवान हो जाने पर भी स्त्री-पुरुष का भेद-ज्ञान. नहीं था। उन्हें अयोध्या में ले आने का बीड़ा वेश्याओं ने उठाया, और ले आईं। ये वेश्यायें अर्द्ध-नग्न योगिनी बनकर शृंगी-ऋषि के समीप गईं और उन्हें चमक-दमक-दिखा, पौष्टिक मोदक खिला, बातों के जाल में फँसाकर अयोध्या ले आईं। फिर यज्ञ हुआ और रानियाँ गर्भवती हो गईं और यथा

समय राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न नामक चार पुत्रों का जन्म हुआ। राजा दशरथ के वीर्य से नहीं, यज्ञ और ऋषि-शृंग के प्रताप से।

भगवान् रामचन्द्रजी की इस कथा को मन में ही समझ लेना चाहिए, जबान से कुछ कहना नहीं चाहिए। अब दूसरे उदाहरण लीजिए।

राजा सुदास के कोई संतान न थी। अतः संतान के लिए उन्होंने वशिष्ठ ऋषि से अपनी पत्नी दमयन्ती का नियोग कराकर पुत्र उत्पन्न कराया था। कारण यह बताया जाता है कि निस्सन्तान व्यक्ति यदि किसी बच्चे को गोद ले ले, तो वह उसके गोत्र में नहीं मिलता और न परिवार का अंग ही बनता है। ऐसी ऋग्वेद की आज्ञा है। नियोग द्वारा गर्भस्थ भ्रूण का पोषण माता के रक्त से होने के कारण वह बच्चा परिवार का अंग होता है।

इसी प्रकार राजा शान्तनु के पुत्र विचित्रवीर्य और चित्रांगद जब निस्सन्तान मर गये, तो उनकी स्त्री अम्बा और अम्बालिका का नियोग व्यास के द्वारा कराया गया जिससे धृतराष्ट्र तथा पांडु की उत्पत्ति हुई।

पांडु की दो स्त्रियाँ थीं कुन्ती और माद्री। पांडु को शाप हो गया था कि स्त्री को छूते ही मर जायेंगे। अतः उन्होंने अपनी स्त्री कुन्ती को नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कराने की आज्ञा दी। कुन्ती इस आज्ञा से बहुत लज्जित हुई, तो राजा पांडु ने उसे तमाम पुरानी कथाएँ सुनाईं जिनमें नियोग द्वारा संतान उत्पन्न करायी गयी थी। पांडु ने कुंती को समझाया कि हे सुंदरी, पूर्वकाल में स्त्रियों के लिए कुछ रोक-टोक न थी। हे सुहासिनी, उन दिनों वे स्वतंत्र रहकर रति-विलास की आशा में स्वच्छन्दतापूर्वक घूमा करती थीं। इससे उन्हें अधर्म नहीं होता था। पुत्रहीन व्यक्ति को चाहिए कि वह पिंडोदक कर्म के लिए किसी प्रकार पुत्र की प्राप्ति करे और कुल का नाम जारी रखने के लिए प्रयत्नशील रहे।

पांडु के इस कथन से कुन्ती निरुत्तर हो गई और मजबूर होकर उसने धर्म देवता को बुलाया और उनसे नियोग कराकर धर्मराज युधिष्ठिर को उत्पन्न किया, फिर वायु देवता को बुलाया और उनसे नियोग कराकर भीमसेन को उत्पन्न किया और फिर देवराज इन्द्र को बुलाया और उनसे नियोग कराकर अर्जुन को उत्पन्न किया।

कुन्ती के तीन पुत्र हो जाने पर पांडु के आदेश से उसने अपनी सौत माद्री के लिए अश्विनीकुमारों को बुलाया और उनसे नियोग कराकर माद्री ने नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया।

कुन्ती की एक और कथा है। कुन्ती जब क्वाँरी थी, तो उसने सूर्य देवता को बुला लिया था। किन्तु क्वाँरी होने के कारण उसने सूर्य से भग-सम्भोग नहीं कराया। तब सूर्य ने उसके कान में संभोग करके कर्ण को उत्पन्न किया। कर्ण का पालन-पोषण एक शूद्र के घर में हुआ, क्योंकि वह चोरी से व्यभिचार द्वारा पैदा हुआ था। इसलिए उसे छुपाया गया। लेकिन कर्ण बड़ा वीर हुआ, और वह दुर्योधन का मित्र बनकर पांडवों से लड़ा। महाभारत का एक पर्व ही कर्ण-पर्व के नाम से प्रसिद्ध है।

ब्राह्मणी शास्त्रों में धर्म एक ऐसे देवता हैं जिनके मनुष्य की भाँति सारे अंग-प्रत्यंग और आकृति है। कुन्ती ने जब उन्हें बुलाया, तो धर्म मनुष्य के रूप में उसके पास दौड़े आये, और उससे सम्भोग करके उसे गर्भिणी बना गये। इसी तरह वायु (हवा) भी मनुष्य के समान अंग-प्रत्यंग वाले देवता हैं। उन्होंने भी कुन्ती के बुलाने पर उसके पास आकर उसके साथ सम्भोग किया और उसे गर्भिणी बना गये। देवराज इन्द्र और अश्विनी-कुमार तो नराकृति के देवता हैं ही। अश्विनीकुमारों को देवताओं का वैद्य कहा जाता है। कहते हैं, उन्होंने बूढ़े चवन ऋषि को जवान बनाने के लिए "च्यवनप्राश" नाम का एक अवलेह बना

दिया था। ऐसे कुशल वैद्य ने यदि कुन्ती की सौत माद्री से संभोग करके उसे गर्भिणी बनाया हो, तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं।

देवराज इन्द्र का कहना ही क्या है! वे तो दिन-रात शराब के नशे में उन्मत्त रहते हैं, और नंगी स्त्रियाँ उनकी जाँघों पर बैठी रहती हैं। महासुन्दरी स्त्री शची के रहते हुए भी उनके मनोरंजन के लिए रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी आदि अप्सराएँ स्वर्गीय नृत्य और चित्ररथ आदि गंधर्व अपने मनोहर संगीत से देवराज का मनोरंजन किया करते हैं। वे सतत सुरापान में निरत रहते हैं। उन्होंने छल से ऋषि-पत्नी अहल्या का सतीत्व भंग किया था। यदि उन्होंने कुन्ती के बुलाने पर उसके साथ सम्भोग करके अर्जुन को पैदा किया, तो कोई आश्चर्य नहीं।

मनुस्मृति और ऋग्वेद के अनुसार नियोग एक पवित्र कार्य है। इसे प्रत्येक पुत्रहीन स्त्री को कराना चाहिए। यह एक ऐसी धर्माज्ञा है, जिससे स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित न रह सका तथा ऋषियों व ब्राह्मणों के लिए पर-स्त्री-गमन का रास्ता खुल गया।

यह व्यभिचार का भयानक रूप वैदिक युग से महाभारत युग तक मिलता है। विधवा तक को भी नियोग द्वारा संतान उत्पन्न कराने का रास्ता खोल देता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के कथनानुसार किसी स्त्री को यज्ञ के समय उतने ही कुश रखने चाहिए जितने पुरुषों से उसने सम्भोग कराया हो। इस प्रथा का रूप हमें हर काल में मिलता है, परन्तु हर्ष-काल में सभी युगों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है जिसकी झाँकी हर्ष-चरित्र के कितने ही अध्यायों में देखने को मिलती है। मनुष्य जब समाज का एक रास्ता बनाता है, तो उसकी पूर्ति के लिए दूसरे रास्ते बन ही जाते हैं। चाहे वे समाज-विरोधी हों या समाज-सुधारक।

नियोग में संतान के लिए स्त्री को पर-पुरुष से सम्भोग कराने को मजबूर किया जाता है। वैसे कहा गया है कि देवर स्त्री का

दूसरा पति है, परन्तु नियोग प्राय: देवता, वैदिक ऋषि-मुनि और ब्राह्मणों द्वारा ही कराया जाता है। ये लोग 'बीज दान' के नाम से निस्संतान स्त्रियों के साथ सम्भोग करते थे और करते हैं। ऋषियों और ब्राह्मणों की व्यभिचार-लीला तो अकथनीय है। कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं।

भागवत तृतीय स्कन्ध बारहवें अध्याय में भीष्म-पितामह ने कहा था कि हम सब ब्रह्मा की संतान हैं इस पर मैत्रेय ने कहा कि हम लोगों ने सुना है कि ब्रह्मा ने अपनी काम- रहित मनोहर कन्या सरस्वती की कामना कामोन्मत्त होकर की और उसे अपनी पत्नी बना लिया। ब्रह्मा के दस पुत्र हुए, जिनसे सृष्टि की रचना हुई।

महाभारत में उद्दालक ऋषि की कथा है। उद्दालक अपने आश्रम में पत्नी और पुत्र के साथ विराजमान थे। इतने में वहाँ एक ब्राह्मण आया और उद्दालक की पत्नी को खींचकर बाहर ले गया। वहाँ उसके साथ अनेक ब्राह्मणों ने भी बलात्कार किया। उद्दालक के पुत्र ने जब इस कृत्य का विरोध किया, तो उद्दालक ने यह कहकर उसे शान्त कर दिया कि बेटा, यह तो हमारे धर्म की रीति है। कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री को पकड़कर बलात्कार कर सकता है।

वृहस्पति चन्द्रमा के गुरु थे। चन्द्रमा उनसे विद्या पढ़ने उनके घर जाता था। विद्या पढ़ते-पढ़ते उसने वृहस्पति की स्त्री महा-सुन्दरी तारा से प्रेम पैदा कर लिया और एक दिन तारा को लेकर भाग गया और लापता हो गया। चन्द्रमा एक साल से अधिक तारा से सम्भोग करता रहा और उसने बुध नाम का एक पुत्र भी उत्पन्न किया। इधर वृहस्पति बहुत क्षुब्ध और व्याकुल हुए। उन्होंने देवताओं और ब्रह्मा से फरियाद की, तो सब देवता और ब्रह्मा ने चन्द्रमा की भर्त्सना की और वृहस्पति की स्त्री

तारा को उन्हें लौटा देने का आदेश दिया। चंद्रमा ने तारा को तो वापस कर दिया, किन्तु अपने पुत्र बुध को नहीं दिया।

पराशर ऋषि की कथा सुनिए। आप गंगा-पार करना चाहते थे। मल्लाह किसी काम में व्यस्त था। उसने अपनी जवान बेटी से ऋषि को नौका द्वारा गंगा-पार पहुँचा आने को कहा। किन्तु पराशरजी जब गंगा की बीच धारा में पहुँचे, तो कामासक्त होकर मल्लाह की लड़की से भोग चेष्टा करने लगे। लड़की ने कहा, बीच गंगा में यह क्या पाप करते हो? बोले, हमारे तप के प्रभाव से तुझे पाप नहीं लगेगा। लड़की ने कहा कोई देखेगा, तो क्या कहेगा, मैं तो लज्जा से मर जाऊँगी।

बोले, मैं कोहरा पैदा किये देता हूँ, जिससे अन्धकार हो जायगा और कोई देख न सकेगा। लड़की बोली, यदि मुझे गर्भ रह गया, तो मैं किसी काम की न रहूँगी। बोले, मेरे पुण्य-प्रताप से तेरे पेट से ऐसा बेटा होगा जिससे जब तक सूर्य-चन्द्र रहेंगे, तेरा नाम रहेगा। लड़की लाजवाब हो गई और पराशरजी ने उससे सम्भोग करके व्यास को पैदा किया।

भागवत स्कन्ध ९ में लिखा है कि वरुण देवता ने उर्वशी वेश्या से सम्भोग करके वशिष्ठ को पैदा किया, जो बड़े होकर इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओं के पुरोहित हुए। इसी तरह बृहस्पति ने अपने बड़े भाई इतत्थ की स्त्री 'ममता' से सम्भोग करके भरद्वाज को पैदा किया, जो बड़े विद्वान वैदिक-ऋषि हुए।

विश्वामित्र ऋषि तप करते थे। उनके तप से इन्द्र डर गया कि तप करके विश्वामित्र कहीं इन्द्रासन न ले लें। अतः उसने मेनका अप्सरा को उनका तप भंग करने के लिए भेजा। मेनका विश्वामित्र के पास आयी और नाना प्रकार के स्त्री-सुलभ हाव-भाव करने लगी। विश्वामित्र मोहित हो गये और तप छोड़कर उससे सम्भोग करने लगे। मेनका और विश्वामित्र के समागम से

शकुन्तला नामक लड़की का जन्म हुआ, जिसे कण्व ऋषि ने पाला और राजा दुष्यन्त ने उस पर मोहित होकर उसके साथ संभोग किया, जिससे भरत का जन्म हुआ, जिसके नाम पर महाभारत है।

महाभारत आदि पर्व १३१ में लिखा है कि महर्षि भरद्वाज गंगा-स्नान को गये। वहाँ घृताची नामक अप्सरा के अलौकिक रूप-सौन्दर्य को देखकर उनका मन डिग गया, और कामोद्वेग से उनका वीर्यपात हो गया। उसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञ-पात्र में रख दिया। उसी से एक बालक पैदा हुआ जिसका नाम द्रोणाचार्य हुआ।

अध्यात्म रामायण बालकांड सर्ग ३ की कथा है कि महर्षि विभांडक किसी बड़ी झील में स्नान कर रहे थे। वहाँ उन्होंने उर्वशी अप्सरा को देखा। उसे देखते ही मुनि ऐसे कामातुर हुए कि उनका वीर्य जल में स्खलित हो गया, जिसे एक प्यासी हिरणी ने संयोग से पी लिया और गर्भवती हो गई। उसी से शृंगी ऋषि का जन्म हुआ।

श्रीकृष्ण भगवान् को तो भागवतकार ने "चोर-जार-शिखा मणि:" कहकर उनकी प्रशंसा की है। बचपन में वे यमुना के किनारे जहाँ गोपियाँ प्रभात-काल में जल में नग्न स्नान कर रही थीं, चुपके से गये और उनके कपड़े बटोरकर कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये। गोपियाँ स्नान करके जब कपड़े पहनने चलीं, तो सारे कपड़े गायब थे। अब नंगी जल से बाहर कैसे निकलें। उन्हें व्याकुल देखकर कृष्ण भगवान् ने कहा—हे सखियो, तुमने निपट नंगी होकर जल में स्नान किया है, तुम्हारे इस कर्म से वरुण-देव का अपमान हुआ है। इसलिए, इस अपराध को क्षमा कराने के लिए, मस्तक पर अंजलि बाँधकर प्रणाम करो, तब तुम्हें वस्त्र मिलेंगे। लाचार हो गोपियों ने यमुना से नंगी निकलकर मत्थे पर हाथ जोड़कर प्रणाम किया, तब उन्हें कपड़े मिले और श्रीकृष्ण

भगवान् को उनके लज्जा-अंगों को खुला देखने का सुख प्राप्त हुआ।

इसके अतिरिक्त महारास लीला करते हुए गोपियों के आगे बाहु फैलाना, लिपटना, गले लगना, गोपियों की लट, जाँघ, नीवी और स्तनों को छूना, हँसी-मसखरी करना, नखच्छेदन, क्रीड़ा-कटाक्ष और मंद मुस्कान आदि से गोपियों का कामोद्दीपन कर उनके साथ रमण करना प्रसिद्ध है।

संसार की किसी भी जाति ने उसके प्रति जिसे ईश्वर माना है, ऐसी वीभत्स बातों का प्रचार नहीं किया, जैसे कि आर्य-गुरुओं ने भगवान् कृष्ण के चरित्र के चित्रण करने में किया। ईश्वर के प्रति सभी ने पवित्र भाव से उनके पवित्र गुणों का ही संगायन किया है। ईश्वर को पुरुष भी पवित्र भाव से देखता है और स्त्रियाँ भी पवित्र भाव से देखती हैं। स्त्रियाँ ईश्वर को पति, और कान्त समझकर उनके साथ रास-विलास करने की कामना कभी नहीं करतीं। भागवत की रास-पंचाध्यायी, गीतगोविंद, अष्टछाप एवं विद्यापति आदि कवियों की कविताओं में सारे कोकशास्त्र और नायिका-भेद की बातों का प्रचार किया गया है और राधाजी के नखशिख का ऐसा निर्लज्जता-पूर्ण वर्णन हुआ है कि कोई भी चरित्रवान व्यक्ति उसे अपने मुख से उच्चारण नहीं कर सकता।

ऐसा क्यों किया गया ? इस प्रश्न के उत्तर में आर्य-गुरुओं की यही नीति नजर आती है कि विलासिता और व्यभिचार का प्रचार करके सारे देश को व्यभिचार के पंक में डुबाकर अपनी गुरुआई का शंख बजाया जाय।

मद्रास की सेन्सस रिपोर्ट १८६७ के अनुसार दक्षिण-पथ की कौरवार जाति में कोई भी व्यक्ति अपनी पुत्री व पत्नी बेचने व दूसरों से उनका सम्भोग कराने के लिए स्वतंत्र था। पंजाब के

गांधार-ब्राह्मण अपनी पुत्री तथा पुत्र-बधुओं तक से संतान उत्पन्न कर लेते थे।

डा० म्योर के अनुसार उत्तर-पश्चिम भारत के ब्राह्मण अपनी पत्नियों को किराये पर चलाते थे।

मदुरा मैनुअल ८२ ई० के अनुसार पश्चिम घाट के एक-जाति में क्वाँरी लड़की के सन्तान हो जाना अनुचित नहीं माना जाता था।

"The Position of women in Hindu-civilization" में डा० अम्बेडकर ने लिखा है कि यद्यपि स्त्री का विवाह एक ही व्यक्ति से होता था, तथापि वह पूरे परिवार की सम्पत्ति मानी जाती थी किन्तु उसे पति की सम्पत्ति का हिस्सा नहीं मिल सकता था। अर्थात् सम्पति का उत्तराधिकारी पुत्र ही हो सकता था।

वैदिक युग में किसी भी स्त्री को पवित्र नहीं माना जा सकता था। नियोग-रूपी बलात्कार और व्यभिचार की भट्ठी में वदिक पुरुष भाई-बहिन ही नहीं, अपितु पिता-पुत्री के सम्बन्ध को भी पवित्र न रख सके। सुरा और विजया के नशे में न बहन को पहचानते थे और न बेटी को, तथा न उनके पवित्र सम्बन्धों की स्मृति रखते थे। कामोन्मत्त हो पशुओं की भाँति व्यभिचार करते थे।

संस्कृत-साहित्य से पता चलता है, पहले वैदिक देवता, वैदिक ऋषि और आर्य-राजागण व्यभिचार-लीला अपने आपस में ही करते थे। परन्तु कालान्तर में जब भारत पर इनका अखण्ड प्रभुत्व हो गया, तो व्यभिचार आम जनता की स्त्रियां के साथ भी होने लगा। यह कामोभोग तांत्रिक काल में बहुत बढ़ा पाया जाता है। रुद्रयामल तंत्र में लिखा है—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चांडाली तु काशिका।
चर्मकारी प्रयाग:स्याद्रजकी मथुरा मता॥ X
अयोध्य: वार वधू प्रोकत:, माया तु नापितस्त्रिय:॥

अर्थ—रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करना पुष्कर स्नान के समान है, चांडाली के साथ समागम काशी के समान है, चमारिन से समागम करना प्रयाग तीर्थ के समान है, धोबिन से समागम करना मथुरा तीर्थ के समान तथा वेश्या के साथ समागम लीला करना अयोध्या तीर्थ के समान और नाई की स्त्री के साथ समागम करना हरिद्वार के समान।

इसी कामभोग को उत्तेजना देने के लिए आर्यों ने नशीली वस्तुओं का आविष्कार किया जिनके पीने और सेवन से व्यभिचार को उत्तेजना मिलती थी। नशों का आविष्कार वैदिक देवताओं, वैदिक ऋषियों ने किया तथा बाद में उनका प्रचार आम जनता में हो गया। अगले अध्याय में "सुरा पान" पर प्रकाश डाला जायगा।

दूसरा अध्याय

सुरा-पान

वैदिक आर्य शीत-प्रधान देश के रहनेवाले थे। भारत में आकर भी पहले वे त्रिविष्टुप तिब्बत और हिमालय पर्वत के शीत-प्रधान देशों में रहे। आर्यों का स्वर्ग कहाँ था, इसका पता महाभारत के स्वर्गारोहण-पर्व से मिलता है। वैदिक देव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि सब पहाड़ी प्रदेशों में रहते थे। शीत-प्रधान देशों के निवासियों को ठंढ से बचने तथा अपने को गरम रखने के लिए मद्य-पान की स्वाभाविक आवश्यकता रहती है। वैदिक और संस्कृत-साहित्य में ऐसे ढेरों प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक आर्य खूब सुरा-पान करते थे। वैदिक देवों के राजा इन्द्र की तारीफ है कि वे सतत सुरा-पान में निमग्न रहते थे। देवराज अपनी प्रिय पत्नी शची को अपनी जाँघों पर बिठाकर बायाँ हाथ उसके कंधे पर रखकर दाहिने हाथ से स्वयं उसे प्यार से सुरा पिलाकर कामोन्मत्त करते थे। देवराज की सभा में नृत्य गीत करनेवाली रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी आदि अप्सराएँ तथा चित्ररथ आदि गंधर्व सुरा-पान से मस्त होकर नर्तन, गायन, वादन आदि करते थे। महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' काव्य की बुनियाद सुरा-पान है। लिखा है, कि एक यक्ष अपनी प्रियतमा यक्षणी के साथ सुरा-पान में मस्त नग्न जलविहार कर रहा था कि उधर से महर्षि दुर्वासा आ निकले। दुर्वासा को आते देख यक्षिणी लज्जित हो यक्ष के अंक से अलग हो गई और हाथ जोड़कर ऋषि को प्रणाम किया, किंतु यक्ष रत्नों की थैली-छिने वणिक की भाँति जलाशय में खड़ा ऋषि की ओर रोष-भरी दृष्टि से घुरचता रहा

और प्रणाम नहीं किया। इस पर क्रोधित हो दुर्वासा ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि, "जिस स्त्री के साथ विहार करने में तू इतना दीवाना है, उससे तेरा सदा के लिए वियोग हो जाय।" दुर्वासा के इस दारुण शाप की खबर देवराज इंद्र तक पहुँची, तो वे बड़े व्याकुल हुए, क्योंकि वह यक्ष उनकी सभा का बहुत अच्छा कलाकार था, अतः उन्होंने मुनि से बहुत अनुनय-विनय करके शाप की अवधि केवल एक वर्ष करा दी। यक्ष स्वर्ग से धरती पर ढकेल दिया गया। इसी विरह-व्याकुल यक्ष के आकाश-मार्ग से जाते हुए मेघ द्वारा दिये गये संदेश का नाम 'मेघदूत काव्य' है।

इस अत्यधिक मद्य-पान के लिए यजुर्वेद में कहा गया है कि "पानी तो पशुओं के पीने के लिए बना है, मनुष्य का पेय तो 'सुरा' है।" देवराज इंद्र की सुरा-प्रियता के लिए ही शायद सौत्रामणि-यज्ञ होता था, जिसमें अधाधुंध सुरा-पान किया जाता था। देवराज इंद्र को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थनाएँ की जाती थीं कि "हे इंद्र, आइए, और इस उत्तम 'सुरा' का पान करके प्रसन्न हूजिए, तथा यज्ञ-विरोधी असुरों का संहार कीजिए।"

'सुरा' का अर्थ है "सुर-प्रिया" या "देवानां प्रिया" अर्थात् देवताओं की प्यारी वस्तु। जो सुरा नहीं पीते थे, उन्हें 'असुर' कहा जाता था। यजुर्वेद की इस बात का स्पष्ट समर्थन संस्कृत के आदिकाव्य महर्षि वाल्मीकि की रामायण में है, जो कि 'आर्ष-ग्रन्थ' कहलाता है। यथा—

> असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः।
> हृष्टः प्रमुदिताश्चा सन् वारुणीग्रहणात्सुराः॥
> (सर्ग ४५, श्लोक ३८)

अर्थात् वे लोग असुर हैं, जो सुरा-पान नहीं करते। देवगण वारुणी सुरा का पान करके हर्षित, प्रमुदित और हृष्ट-पुष्ट होते हैं।

ऐसा पता चलता है कि उस समय गांधार में शराब की बड़ी-बड़ी डिस्टिलिरियाँ थीं, जिनमें 'कीलाल' लोग सुरा का निर्माण करते थे। वेदों की अनेक ऋचाओं में आता है-"कीलालाय सुराकारम्"। अब भी पहाड़ों के दुर्गम स्थानों में 'मदिरा' बनती है, और मैदानों में भी जंगलों और दुर्गम स्थानों में मदिरा बनाई जाती है। सरकार की ओर से 'इक्साइज ऐक्ट' बन जाने पर भी बेशुमार शराब चोरी से बनती है, जिनकी गिरफ्तारी की खबरें समाचार-पत्रों में छपती ही रहती हैं।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि मैदानी क्षेत्रों और जंगली आदिवासियों में मदिरा बनाने और पीने का चलन चलानेवाले आगंतुक आर्य हैं। वैदिक यज्ञों में अतिशय पशुहिंसा, मद्यपान और अवारित व्यभिचार के विरोध में ही ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत-भूमि में जैन और बौद्ध नाम के दो विशाल धर्म खड़े हो गये, जिनके मद्य-मांस के प्रबल विरोध के कारण हिंसामयी यज्ञें बंद हो गई, मद्य-पान निंदनीय हो गया, और वैदिक ऋषि तथा ब्राह्मण लज्जित होकर गोभक्षक से गोरक्षक बन गये। परन्तु मद्य-मांस सेवन को वे हृदय से न त्याग सके, और उसे छिपकर करने लगे। तंत्र-शास्त्र और बाम-मार्ग का आविष्कार किया जिनमें गुप्त-रीति से पंच-मकारों का सेवन होता रहा। ये लोग शक्ति के उपासक बने और अपने आपको 'शाक्त' कहने लगे। इनकी घोषणा है—

अंत: शाक्त: बहि: शैव: सभामध्ये च वैष्णव:।
नाना-रूप-धरा कौला: विचरंति महीतले ॥

अर्थात् भीतर से मद्य-मांस-मैथुन-सेवी शाक्त, बाहर से त्रिपुंड और रुद्राक्षधारी शैव तथा दस आदमियों के बीच में शाकाहारी वैष्णव बन जाना, इत्यादि, नाना प्रकार के रूप धारण करके कौल अर्थात् कुलवाले लोग भूतल पर विचरण करते हैं।

बाल्मीकि रामायण से प्रकट होता है कि सूर्यवंशीय काकुत्स्थ

क्षत्रियों में, जो कि नैष्ठिक वैदिक धर्मी थे, मद्य-मांस का प्रचुर सेवन होता था। यथा—

पानयामास काकुत्स्थ शचीमिव पुरन्दरः।
मांसानि च समुष्ठानि फलानि विविधानि च॥
वालाश्च रूपवत्याश्च स्त्रियं पानवश्यानुगः।
उपानृत्यन्त काकुत्स्थ नृत्य गीत विशारदाः॥
(वा० २, ४२, १६-२१)

अर्थात् राजवाटिका में, पुष्प-बिछे आसन पर उत्तम चादर बिछी थी। उस पर विराजमान काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजी सीता को उसी तरह शुद्ध शराव पिलाते हैं जिस तरह इन्द्र शची को पिलाते हैं। उसी समय सेवक खाने के लिए अनेक प्रकार के मांस-भोजन और मीठे फल ले आये तथा नाचने और गाने में निपुण नर्तकियाँ मदिरा के नशे में मस्त आकर नाचने-गाने लगीं।

सुराय सौवीरकयोर्यदन्तरं-तदन्तरं दासरथेश्च मैथिली।

तात्पर्य यह कि जिस समय उदार स्वभाववाली सुन्दरी स्त्रियों ने आकर मद्य-पान किया और मस्त होकर नाचने लगीं, उस समय सीताजी ने घटिया और बढ़िया शराब का विश्लेषण करते हुए कहा कि जो अंतर सिंह और सियार में है, जो अन्तर नदी और समुद्र में है, जो अंतर राम और मुझमें है, वही अन्तर घटिया और बढ़िया शराव में है।

बाल्मीकि रामायण (५, ११, २०) में सुरा के नाम और गुण भी बताये गये हैं कि सुगन्धित मसालेदार शराब को 'मैरेय' कहते हैं, फलों, फूलों और शक्कर से खींची जानेवाली शराब को 'वारुणी' कहते हैं, जो सबसे तेज नशीली होती है। जो खजूर के रस (ताड़ी) में विशेष वनस्पतियों को पीसकर खींची जाती थी, जिसका नशा पीते ही चढ़ जाता था, उसे 'मंड' कहते हैं, और साधारण कोटि की शराव को "सौवीरक" कहते हैं।

श्री रामचन्द्रजी के वनवास के लिए जाने और वहाँ सीता-हरण हो जाने पर अयोध्या की क्या दशा हुई। इसका दिग्दर्शन कराते हुए वाल्मीकिजी लिखते हैं कि अयोध्या मानो एक टूटे हुए शराब के अड्डे-जैसी हो गई थी जहाँ शराब के बर्तन तोड़-फोड़ डाले गये थे और टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। रामचन्द्रजी पूरे दिन भूखे रहकर सायंकाल वन-फल खाते हैं। उन्होंने शिकार करना और महापान आदि छोड़ दिया है।

यदि वेदप्रमाण दरकार हो, तो सोम-सुरा की प्रशंसा में एक-दो ऋचाएँ नहीं, सूक्त के सूक्त उद्धृत किये जा सकते हैं। आर्य राजाओं के समय में सुरा का इतना महत्त्व था कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए सुरा चढ़ाने की मानता मानी जाती थी। वनगमन के समय सीताजी जब गंगा-तट पर पहुँचीं, तो उन्होंने हाथ जोड़कर गंगाजी से प्रार्थना की कि हे देवि! यदि मैं वन-यात्रा समाप्त करके सकुशल अपने पति के साथ लौट आऊँगी, तो हजार घड़े सुरा, अनेक प्रकार के मांस से बने भोजन, मधुर फल, ताम्बूल और वस्त्र से रामजी और लक्ष्मण के साथ तुम्हारी पूजा करूँगी तथा ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। यथा—

देवि गंगे नमस्तुभ्यं निवृता वनवासतः।
रामेण पूजयेत्वाऽहं लक्ष्मणेन समन्विता॥
सुरा घट सहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
फल ताम्बूल वस्त्रैश्च ब्राह्मणैः कोटिभिः व्रते॥
(वाल्मीकि रामायण २, ५३, ८६)

फिर सीताजी जब यमुना के बीच पहुँचती हैं, तो यमुनाजी से भी सौ घड़े शराब चढ़ाने की मानता करती हैं। यथा-

कालिंदी मध्यमायाता सीता त्वे नाम वन्दतः।
यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेण सुराघटशतेन च॥

अर्थात् यमुना के बीच में पहुँच कर सीताजी उनके नाम की

वंदना करने लगीं और मानता की कि हे यमुने ! जब मैं अपनी नगरी में सकुशल लौटूँगी तो हजार गौवों और सौ घड़े शराब से तुम्हारी पूजा करूँगी।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि सूर्यवंशियों में मद्य-पान अत्यधिक रूप से प्रचलित था। अब चन्द्रवंशियों की ओर आइए। चंद्रवंशियों में श्रीकृष्ण के वैयक्तिक जीवन में सुरापान नहीं मिलता, पर उनके भाई बलदेवजी मदघूर्णित नेत्र रहते थे, ऐसा लिखा मिलता है, और द्वारका में यदुवंश का संहार मद्यपान ही से हुआ। भीमसेन को कौरवों ने जहरीली शराब पिलाकर नदी में डाल दिया था, परंतु संयोग से भीम के शरीर को सांपों ने डसा जिससे "विषस्य विषमौषधम" प्रयोग के अनुसार भीमसेन जिंदा हो गये, और इस नीचकर्म का बदला कौरवों से ले लिया।

सबसे अधिक सुरा-पान वैदिक काल में मिलता है। उस काल में शराब इतनी प्रिय थी कि सभाओं में पीने के लिए लोगों को केवल शराब ही दी जाती थी। यजुर्वेद में 'मासर' नामक मदिरा का नाम आया है, जो चावल, जौ, घास को सड़ाकर बनाई जाती थी। ऐसा उल्लेख "दि वैदिकिज्म" पृ० ५७-५८ में है।

डा० वी० जी० गोखले लिखते हैं कि सूर्यास्त के समय आर्य नर-नारी सुरा-पान के साथ दिन का कार्य समाप्त करते हैं, और इतना पीते कि पैर लड़खड़ाने लगते, जबान ऐंठने लगती और आँखें लाल हो जाती थीं।"

"सोशल ऐंड रिलीजस लाइफ इन दि गृहसूत्र" में भी बी० एम० आप्टे ने लिखा है कि सामाजिक उत्सवों में आठ स्त्रियाँ नृत्य करती हुई जन समुदाय को मदिरा पिलाती थीं।"

राजेन्द्रलाल मिश्र द्वारा लिखित 'इंडो आर्यन' भाग २ पृष्ठ ४२५ में लिखा है कि—काव्य-युग में सुरापान डटकर चलता था।

महाभारत के अनुसार वन-विहार के समय लोग खूब शराब पीते और भैंस का मांस खाते थे।

महाभारत (२-४१, १०-११) के अनुसार काबुल की शराब भारत में आती थी। बिलोचिस्तान की बनी शराब भी भारतीय पसंद करते और उसे स्थल-मार्ग से मँगाते थे। कपिशा से स्थल-मार्ग द्वारा शराब भारी मात्रा में अफगानिस्तान जाती थी। गांधार की बनी शराब भी अफगानिस्तान और अरब की ओर निर्यात की जाती थी।

हर्षचरित (अ० ४, ५ व ७) में मिलता है कि रनिवासों में खूब शराब पी जाती थी। मद्यपान के लिए राजभवन में एक नियत स्थान होता था। वहाँ भैरव को प्रसन्न करने के लिए सेवकों के सिर पर गूगल जलाया जाता था जिससे उनकी चमड़ी जल जाती थी और हड्डियाँ दीखने लगती थीं। इस प्रकार पीड़ा से छटपटाते मनुष्य का माँस पुजारी देवता पर चढ़ाते और भैंसों की बलि देते थे। भंडी की सेना ने मालवा की शराब और सोने चाँदी की दुकानें लूट ली थीं।

सिंध घाटी में धार्मिक अवसरों पर मांस और मदिरा की धूम रहती थी। पुरोहित लोग मंदिरों में बलि के समय जन-समुदाय को मदिरा पिलाते और भाँति-भाँति के मांस प्रसाद में देते थे। उस समय जन-समुदाय शराब पीता था तथा स्त्रियाँ भी शराब पीकर आम-रास्तों पर घूमती थीं।

धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि सुरा, भाँग, अमृत, विष सब समुद्र मंथन से निकले थे, जिसमें जहर को शंकरजी ने पिया था और अमृत को देवताओं ने। अमृत यद्यपि असुरों के पास था, किन्तु विष्णु ने मोहिनी रूप धर कर असुरों को मोहित करके अमृत का कलश उनसे लेकर देवताओं को पिला दिया। शंकरजी

विषपान से ऐसे बेहोश हो गये थे कि अपने भक्त असुरों की उस समय कोई सहायता न कर सके।

हिंदू-शास्त्रों में शराब को सुरा, मदिरा, शुद्ध पेय, मधुपर्क आदि नामों से पुकारा गया है। सुरा-पान की प्रशंसा में कहा गया है कि शराब पीनेवाला मनुष्य अपने आपको खो बैठता है। उसकी आँखे लाल हो जाती हैं, मस्तिष्क का संतुलन जाता रहता है, तथा मनुष्य विनाश के रास्ते पर चला जाता है। मनुष्य उन्मत्त होकर बलात्कार, व्यभिचार जैसे कलुषित कर्म कर बैठता है और अपने आपको भूल जाता है। उसे होश ही नहीं रहता कि वह कौन है और क्या कर रहा।

तांत्रिक और पौराणिक काल की कथा निराली है, जिसमें निरे रोमांटिक गपोड़े हैं। मार्कंडेय पुराण के अंतर्गत दुर्गा सप्त-शती में लिखा है कि देवासुर-संग्राम में जिस समय विकराल सुंभ-निसुंभ दैत्य क्रोधित हो देवताओं को खा जाने के लिए दौड़ा, तो देवताओं की रक्षा के लिए गई हुई देवी दुर्गा ने उसे ललकारते हुए कहा—

तिष्ठ तिष्ठ क्षणं मूढ़ यावद् मधु पिवाम्यहम्।

अर्थात्–रे मूढ़! तब तक ठहर, जब तक मैं शराब पी रही हूँ।

और तांत्रिक शाक्तों ने तो हद कर दी है। लिखा है—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावद् पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

अर्थात् पियो, पियो, इनती पियो जब तक भूमि पर गिर न पड़ो। गिर पड़ो, तो फिर उठो और फिर पियो, तो फिर तुम्हारा पुनर्जन्म न होगा अर्थात् भव बंधन से मुक्त हो जाओगे।

शाक्तों के भैरवी-चक्र में जो वीभत्स-कॉंड होता है, उसे लिखने की भी सभ्यता इजाजत नहीं देती। केवल इतना ही समझ लीजिए कि शराब के विना कोई कृत्य नहीं होता, क्वारी कन्याओं

के गुप्तांग की मदिरा से पूजा होती, और वही मदिरामृत बँटता है।

यह कहना मिथ्या के सिवा और कुछ नहीं है कि शराब का सबसे अधिक प्रचार "नीच-जातियों" में है, और वे ही पीकर नालियों में गिरते तथा चोरी से शराब बनाते हैं। सच तो यह है कि 'हाई कास्ट' हिन्दू जिन्हें 'नीच-जाति' कहते और समझते हैं, उनमें मद्य-पान के दुर्व्यसन का प्रचार करनेवाले आगंतुक आर्य हैं, जैसे कि विजेताओं ने चीन में अफीम का प्रचार करके बहुत काल तक अफीमची चीनियों का शोषण किया। परन्तु अब वहाँ जागृति हो गई और देशभक्त नेताओं के प्रयत्न से चीन अब अफीमची देश नहीं रहा।

आजादी के आन्दोलन के समय भारत में भी मद्य-पान निषेध के लिए "राष्ट्रपिता" गांधी ने कदम उठाया था। किन्तु उस मद्य निषेध का उद्देश्य अंग्रेजी हुकूमत को आर्थिक धक्का पहुँचाना मात्र था, देश की जनता को इस दुर्व्यसन से बचाना नहीं था। इन पंक्तियों के लिखते समय आजादी मिले बाइस साल हो गये, अब तक वक्तव्यबाजी और अखबारी प्रोपगैंडा के अलावा अमली तौर से कहीं भी मद्य निषेद नहीं हुआ। बल्कि अंग्रेजी हुकूमत के मुकाबले अब मद्य का प्रचार चौगुना-अठगुना हो गया है। पहले जो शराब की दुकान पाँच हजार में उठती थी, आज वह एक लाख की उठती है! इस सत्य पर पर्दा कैसे डाला जा सकता है?

मद्यपान छोटी जातियों की अपेक्षा बड़ी जातियों में बढ़ा है, क्योंकि उनके पास धन है, मंहगी शराब खरीद सकते हैं, छिपकर पी सकते हैं और आमोद-प्रमोद के लिए बड़े-बड़े मकान हैं। मेहनतकश गरीब तंग, अंधेरी, शीली कोठरियों में रहनेवाले लोगों को ये सब साधन सुलभ नहीं। वे मंहगी शराब की जगह स्प्रिट पीते देखे जाते हैं।

तीसरा अध्याय

वैदिक युग में मांस-भक्षण

मांस-भक्षण का विषय बड़ा ही पेचीदा है, क्योंकि एक तरफ माननीय जगद्गुरु शंकराचार्य गोवध बन्द कराते तथा जनता को बार-बार बताते हैं कि हिंदू (आर्यों) ने वैदिक काल से अब तक गो-मांस नहीं खाया है तथा गौ को वैदिक काल में भी 'गो-माता' ही माना जाता था। दूसरी ओर हिन्दू-धर्मशास्त्रों के लेख व प्रमाण हैं, जिनमें मांस-भक्षण के विधान हैं।

लोक-सभा में भारत-सरकार के खाद्य-मंत्री श्री जगजीवनराम का भाषण भी यदि इसकी सत्यता का पूरक नहीं, तो उसे प्रश्न वाचक तो मानना ही चाहिए। परन्तु शास्त्र कहते हैं—

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी॥

(मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २७१)

गाय, वर्धी का मांस तथा दूध और दूध से बनी चीजों से पितरों का तर्पण करने से वे बारह साल तक तृप्त रहते हैं।

वृहदारण्यकोपनिषद (६-४-१८) में लिखा है कि गुणी पुत्र की प्राप्ति के लिए गाय व सांड़ का मांस खाना चाहिए। जो मनुष्य चाहे कि मेरा पुत्र पंडित, शीलवान, सभा को जीतनेवाला, वेदों का व्याख्याता तथा पूरी आयु वाला हो, तो उसे पत्नी के साथ सांड़ व बैल का मांस घी भात के साथ खाना चाहिए।

हरिवंश पुराण (१२-१३) तथा शिव पुराण (६-६१-४५) में लिखित कथा का सार है कि राजा त्रय्यारुण का पुत्र सत्यव्रत युवावस्था में काम-वश किसी नगरवासी की स्त्री का अपहरण

करने के अपराध में पिता द्वारा निकाल दिया गया था। वह जंगल में जाकर मांस व वन-फल आदि खाकर रहने लगा और विश्वामित्र की पत्नी व पुत्रों की दयनीय दशा देखकर उनका भी पालन करने लगा। मांस के अभाव में उसने एक दिन वशिष्ठ की गाय मारकर खुद खाया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिला दिया। पिता को नाराज करने, गुरु की गाय मारने व बिना देवताओं के भोग लगाये मांस खाने के अपराध में वह त्रिशंकू कहलाया।

"हविष्यमत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छागलेणेयसेर वेर्गवयेन च॥
और भृगव्येश्च तथा मांसवृद्धया पितामहा:।
प्रयांति तृप्ति मांसैस्तु नित्यं वर्धीणसामिषे:"॥
(विष्णु पुराण ३, १६, १-२)

हविष, मछली, खरगोश, नेवला, सुअर, छाग, कण, गरुण, नील गाय, मेढ़ा के मांस से पितर उत्तरोत्तर एक-एक महीना ज्यादा तृप्त होते हैं और वर्धीणस के मांस से पितर हमेशा तृप्त रहते हैं।

सांस्कृति रंतिदेवं च मृत संजय शुश्रुम।
यस्य द्विशतसाहस्रा आशन शूदां महात्मन्:॥
गृहानभ्यागतान्–विप्रानतिथिन् परिवेशेका:।
सांस्कृते रंतिदेवस्य या एत्रिमेनिथिर्वसेत्॥
आलम्यंत तदा गाव: सहस्त्राण्येकविंशति:।
तत्रास्य शूद्रा क्रोशन्ति सुमृष्टिमणिकुन्डला:॥
सूपं भूयिष्ठ मश्नीध्वं नाम्यं मांसं यथा पुरा:।
(महाभारत द्रोणपर्व ६७-१६-१८)

महाभारत में राजा रन्तिदेव की कीर्ति-गाथा इसीलिए गाई गई है कि वह अतिथियों तथा ब्राह्मणों के हेतु दो हजार गायें रोज कटवाता था। कभी-कभी खास मौकों पर २१-२१ हजार गायें तक काटी जाती थीं, तथा खाने वालों की इतनी भीड़ हो जाती थी कि

परोसने वाले रसोइयों को कहना पड़ता था कि आप सुरुवा लीजिए, गोस्त तो खत्म हो गया है।

महाभारत ने स्पष्ट कर दिया है कि ब्राह्मण ही गाय का मांस पकाते व खाते थे।

महाभारत वन पर्व (२०८-११-१५) में कहा गया है कि अग्नि के मांसाहारी होने के कारण ही ब्राह्मण पशुओं को मारते हैं। इसीलिए मांस-भक्षण का प्रचार है। जिस तरह ऋतु-काल में अपनी स्त्री के पास जानेवाला भी ब्रह्मचारी ही कहलाता है, उसी तरह देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों आदि को श्रद्धापूर्वक अर्पित करके जो मांस खाता है, उसे मांस-भक्षण का दोष नहीं लगता है।

वशिष्ठ स्मृति के चौथे अध्याय में लिखा है कि पितरों, देवताओं और राजा की पूजा के लिए तगड़ा बैल व बकरा पकाना चाहिए।

विष्णु पुराण (४-१-१७), शिवपुराण (६-६०-३२) तथा वायु-पुराण (२-२४-१-२) में मनु के पुत्र पृषध्र ने अपने गुरु की गाय मारकर खा डाली थी। जिससे च्यवन-मुनि ने शाप देकर उसे शूद्र बना दिया था।

परन्तु यही कथा मार्कण्डेय पुराण में इस प्रकार बतायी गयी है कि पृषध्र ने मुनि की गाय को नीलगाय समझकर खा लिया था। वह केवल सभ्य समाज को भ्रम में डाल देने की-सी बात है।

विष्णु पुराण (५-१०-२६-४१) में श्रीकृष्ण ने इन्द्र की जगह गोवर्धन-पूजा करने के लिए नंद को उपदेश दिया है। ऐसा समझा जाता है कि श्रीकृष्ण अहिंसा-वादी थे, और उन्होंने इन्द्र की पूजा और गोमेध यज्ञ के विरोध में गो-पूजा का प्रचार किया जिस पर क्रोधित होकर इन्द्र ने घोर वृष्टि करके गोकुल को बहाकर नष्ट कर देने का प्रयत्न किया परन्तु श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ को

जिस पर गोपूजन हुआ था, उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की और वैदिक यज्ञों में होनेवाला गो-वध बन्द करा दिया।

माननीय सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा लिखित "राष्ट्रधर्म में गोमेध यज्ञ" का वर्णन बड़े ही स्पष्ट शब्दों में किया है कि गाय की बलि मंदिरों में दी जाती थी, जैसे कुछ-कुछ जगहों पर अब भी बकरा व आटे की गाय बनाकर बलि दी जाती है। काली, भैरव, चण्डी के आगे भैंसा की बलि दी जाती थी।

वायु पुराण के उत्तर खण्ड २१ वें अध्याय में उन्हीं वस्तुओं को श्राद्ध के लिए बताया है जिन्हें मनु आदि कह गये हैं कि गाय के मांस और गोरस से पित्रों की एक-एक वर्ष तृप्ति होती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मांसाहारियों को व्यंग करके कहा है कि "तुम लोगों को कुछ काल पश्चात जब पशु नहीं मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे या नहीं ?"

उत्तररामचरित के चौथे अंक में वाल्मीकि आश्रम के दो छात्रों की बातचीत इस प्रकार दिखाई गई है—

दांडायन—"धिक्कार है तुम्हारी चंचलता को, अरुन्धती और दशरथ की स्त्रियों को लेकर वशिष्ठ आये हैं, तो इस तरह क्या बक रहे हो ?"

सौधांतिक—"हे, वशिष्ठ !"

दांडायन—'और क्या ?"

सौधांतिक—'मैंने तो समझा कोई व्याधा है ?"

दांडायन—"अरे क्या कहते हो ?"

सौधांतिक—"उसने तो आते ही बेचारी कपिला गाय को मार डाला !"

दांडायन—"मधुपर्क मांस-युक्त हो, इस शास्त्र-वचन को जानते हुए आये हुए वेदज्ञ के लिए बछिया या तगड़ा सांड़ गृहस्थ पकाते हैं। इसे सूत्रकार धर्म मानते हैं ?"

आश्वलायन गृह सूत्र (४, २०) में शुलगन शरत या वसंत ऋतु में करना चाहिए या आर्द्रा नक्षत्र में करना चाहिए। अपनी गोशाला का सबसे अच्छा बैल ऊँचे कन्धे वाला छाँटकर लाना चाहिए। उसका चावल व जौ के पानी से "रुद्राय महादेवाय जुष्टोय वर्धस्य" मंत्र के पाठ के साथ अभिषेक करना चाहिए। फिर उसे मार कर "हराय कुपाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवायोग्राय पशुपतये रुद्राय शंकराय चशनाय शनये स्वाहा" मंत्र के साथ आहुतियाँ दे उसकी पूंछ, चमड़ा, सिर और पैर अग्नि में डाले !

अथर्ववेद (कांड ३ सूक्त ३२) में गौमांस-भक्षण का जिक्र है तथा यह भी कहा गया है कि जो ब्राह्मण यज्ञ में बैल की बलि देता है, उसकी सभी देवता सहायता करते हैं।

उपर्युक्त रीति-रिवाजें खुले आम चलन में आने पर राजा व रंक तक को राष्ट्र, देश, धर्म का ख्याल ही न रहा। तब सोने की चिड़िया कहनेवाला भारत हजारों साल की परतंत्रता में पड़ा रहा। देश को गरीब बनाकर, राष्ट्र की सभी शक्ति लूट ली गई। उसे पंगु बना दिया गया। परन्तु आगे चलकर उन्हीं प्राचीन परम्पराओं का विरोध होने लगा। देश की राष्ट्रीयता उमड़ आई और देश से धर्म के विधान को बदलने-सुधारने की आवाजें आईं, जिनका श्रेय खासकर गौतम बुद्ध और महावीर तीर्थंकर को ही दिया जा सकता है, जिन्होंने प्राणी-हिंसा को बन्द करके मानवता का पाठ पढ़ाया। "अहिंसा परमो धर्मः" का आदेश दिया। यज्ञों में धर्म के नाम पर हो रही पशु-बलि, पशु-हिंसा पाप और बलात्कार को रोका।

हिन्दू-धर्म शास्त्रों में हमें नरबलि-यज्ञ का भी वर्णन मिलता है। वैदिक युग में मनुष्य की भी बलि दी जाती थी। इसके प्रबल प्रमाण हैं ऋषि शुनःशेप, जिन्होंने खुद कहा है कि राजा हरिश्चन्द्र ने मुझे २००० गायों के बदले खरीदकर किस

तरह बलि के यूप से बांधा था तथा विश्वामित्रजी ने मुझे बलि पर चढ़ने से बचा लिया। इस बात को बड़े-बड़े विद्वान् भी मानते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र व विश्वामित्र की दुश्मनी का कारण ही शुनःशेप था।

डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ने असुरों के सम्बन्ध में लिखा है कि "भारतीय सभ्यता की परम्परा में असुरों का देवों के पूर्ववर्ती होना अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध किया जा सकता है। संस्कृत-भाषा के कोषों में 'असुर' के पर्यायवाची 'पूर्व-देवः' शब्द से भी यह सिद्ध होता है। यही बात ध्यान में रखकर आर्यों ने अपने आपको सुर का पर्यायवाची देवता बना लिया। मांस व सुरा का प्रयोग न करनेवालों को अपना प्रतिद्वंदी मानकर असुर बना दिया।

वैदिक युग में गोमांस-भक्षण होता था। मांसाहार ब्राह्मणों का अत्यंत प्रिय आहार है, इस सम्बन्ध में नीचे कुछ पंक्तियाँ हम डा० बी० आर० अम्बेडकर की सुप्रसिद्ध पुस्तक "अछूत कौन और कैसे ?" से उद्धृत करते हैं।

बाबासाहेब डा० अम्बेडकर लिखते हैं, यदि आज का सामान्य ब्राह्मण यह कहता है कि हमारे पूर्वजों ने कभी गोमांस नहीं खाया, तो यह बात एक तरह क्षम्य हो सकती है, क्योंकि भगवान् बुद्ध और तीर्थंकर महावीर के वैदिक हिंसा के विरुद्ध अहिंसा-धर्म के प्रचार से देश में मांस-भक्षण बुरा समझा जाने लगा, और ब्राह्मणों ने अपनी इज्जत के लिए वैष्णव आदि धर्मों का प्रचार किया, और अगणित ब्राह्मणों ने मांसाहार त्याग दिया। परन्तु यदि कोई विद्वान् ब्राह्मण कहे कि उनके पूर्वजों ने कभी गोमांस नहीं खाया, तो इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

ऋग्वेद में एक स्थान पर गाय को 'अघ्न्य' (मारने योग्य नहीं) कहा गया है और एक जगह उसकी पवित्रता के सम्बन्ध में कहा गया है कि गाय रुद्र की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की

वहन और अमृत का 'केन्द्रविंदु' है। गाय 'देवी' है। यही नहीं, शतपथ ब्राह्मण में भी गाय की महत्ता के बारे में कहा गया है कि गौ और वैल प्रत्येक वस्तु का आधार हैं, उनमें प्रत्येक पशु की शक्ति निहित है। अतः यदि कोई गाय या वैल का मांस खाता है, तो वह सव कुछ खाता है।

इसी प्रकार का कथन आपस्तंव धर्मसूत्र में भी मिलता है, जहाँ मांसाहार पर प्रतिवंध लगाया गया है।

केवल इन सामान्य प्रतिवंधों के वल पर ब्राह्मण यह नहीं कह सकते कि उनके पूर्वज कभी गोमांस खाते ही न थे, जबकि इनसे कहीं अधिक प्रबल प्रमाण और विधान गोमांस-भक्षण के संवंध में आर्ष-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। इन सामान्य निषेधों का कारण जीव दया नहीं, गाय-बैल की उपयोगिता है। गाय दूध देती है, वैल खेती और बाझ ढोने के काम आता है। देश में अहिंसा-धर्म के प्रचार से लज्जित होकर आर्ष-ग्रन्थों में ऐसे वाक्यों का प्रक्षेपण किया गया प्रतीत होता है।

ऋग्वेद-कालीन आर्य भोजन के लिए गो-हत्या करते थे और गो-मांस खाते थे, वह ऋग्वेद से ही एकदम स्पष्ट है। ऋग्वेद में इन्द्र का कथन है—वे एक के लिए १५-२० वैल पकाते हैं। ऋग्वेद का ही कथन है कि अग्निदेवता के लिए घोड़ों, वृषभों, वैलों, बांझ गौओं तथा मेढ़ों की बलि दी जाती थी। ऋग्वेद से यह भी स्पष्ट होता है कि गौ को एक खड्ग अथवा कुल्हाड़ी से मारा जाता था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में जिन काम्येष्टि यज्ञों का वर्णन है, उनमें न केवल गौ और वैल की वलि देने की आज्ञा है, किन्तु यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार के गौ और वैल की वलि किस देवता को चढ़ानी चाहिए? जैसे कि 'विष्णु' को वलि देनी हो, तो एक बौना वैल चुनना चाहिए। वृत्त के नाशक 'इन्द्र' को बलि देनी हो, तो ऐसा वैल चाहिए कि जिसके सींग लटकते हों और

जिसके माथे पर टीका हो। 'पूषण' के लिए काली गौ, 'रुद्र' के लिए लाल गौ, और इसी प्रकार। तैत्तिरीय ब्राह्मण पंचशारदीय-सेवा नाम के एक यज्ञ का वर्णन करता है, जिसकी सबसे अधिक महत्त्व की बात यह थी कि उसमें पाँच वर्ष की आयु के सत्रह कूबहीन बौने बैल और उतने ही तीन वर्ष की आयु के बौने बछड़े मारे जाते थे।

स्वयं आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में लिखा है—"गौ और बैल 'पवित्र' हैं, इसलिए उन्हें खाना चाहिए।"

दूसरी बात गृह्य-सूत्र में दी गई मधुपर्क बनाने की विधि है। आर्यों में विशेष अतिथियों के स्वागत की एक निश्चित प्रथा बन गई थी, इसमें जो सर्वश्रेष्ठ चीज खिलाई जाती थी, उसे 'मधुपर्क' कहते थे। कई गृह्य-सूत्रों में मधुपर्क के बारे में विस्तृत सूचनाएँ हैं। गृह्य-सूत्रों के अनुसार मधुपर्क पीने के छः अधिकारी हैं—(१) ऋत्विज अर्थात् यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण, (२) आचार्य, (३) दुलहा, (४) राजा, (५) स्नातक, अर्थात् गुरुकुल की शिक्षा-समाप्त विद्यार्थी तथा (६) ऐसा कोई भी आदमी जो आतिथेय का प्रिय हो। कोई-कोई इस सूची में अतिथि को भी सम्मिलित करते हैं। ऋत्विज, राजा और आचार्य के अतिरिक्त शेष लोगों को वर्ष में एक बार मधुपर्क देने का नियम रहा है। ऋत्विज्, राजा और आचार्य को उनके आगमन पर हर बार देना होता था।

यह मधुपर्क किस चीज का बनता था? जिन चीजों से यह मधुपर्क बनता था, उनके बारे में मतभेद है। आश्वलायन-गृह्य सूत्र और आपस्तम्ब-गृह्यसूत्र शहद और दही अथवा घी और दही मिलाने की बात कहते हैं। दूसरे सूत्र-ग्रंथों के अनुसार दही, शहद तथा मक्खन—तीन चीजों के मेल से बनना चाहिए। आपस्तम्ब-गृह्य सूत्र ने दूसरों के इस मत का भी उल्लेख किया है कि तीनों चीजें मिलाई जा सकती हैं। माधव-गृह्यसूत्र कहता है कि वेद

की आज्ञा है कि मधुपर्क विना मांस के नहीं होना चाहिए; इस लिए यदि गौ मांस न हो, तो बकरी का मांस अथवा पायस (खीर) की बलि दी जा सकती है। हिरण्य-गृह्यसूत्र का कहना है कि गौ के मांस की ही बलि देना चाहिए। बौधायन-गृह्यसूत्र का कहना है कि गौ को यदि छोड़ दिया जाय, तो एक बकरी के अथवा एक मेढ़े के मांस की बलि देनी चाहिए, या और किसी जंगली (हिरण आदि के) मांस की। बिना मांस के मधुपर्क हो ही नहीं सकता। यदि कोई मांस की बलि न दे सकता हो, तो वह नान्य पका ले।

इस प्रकार मधुपर्क में मांस, विशेष रूप से गो-मांस एक आवश्यक वस्तु है।

अतिथि के लिए गो-हत्या की बात इतनी सामान्य हो गई थी कि 'अतिथि' का नाम ही 'गोघ्न' पड़ गया था अर्थात् गौ की हत्या करने वाला। इस हत्या से बचने के लिए आश्वलायन-गृह्यसूत्र का सुझाव है कि अतिथि के आगमन पर गौ को छोड़ देना चाहिए, जिससे गौ की हत्या भी न हो और 'आतिथ्य' के नियम का भी भंग न हो।

आश्वलायन-गृह्यसूत्र के अनुसार प्राचीन आर्यों में जब कोई आदमी मरता था, तो एक पशु की बलि दी जाती थी और उस पशु का अंग-प्रत्यंग मृत-व्यक्ति के अंग-प्रत्यंग पर रखकर ही उसे जलाया जाता था। यथा—

१. मादा पशु के पेट की झिल्ली निकालकर ऋग्वेद (१०, १६, ७) का यह मन्त्र कि "उस बाजू पर जो तेरी आग से रक्षा करेगा और जो गौ से प्राप्त होता है" पढ़ते हुए उसके द्वारा मृत व्यक्ति का सिर और मुख ढाँप देना चाहिए।

२. पशु के अण्डकोष को निकालकर मृत-व्यक्ति के हाथों में

रख दे। साथ में यह मन्त्र भी पढ़े—"शमी के दोनो पुत्रों व दोनो कुत्तों से बचे," दाहिने हाथ में दाहिना अण्ड-कोष, बायें में बायाँ।

३. मृत-व्यक्ति के हृदय पर उस पशु का हृदय रखा होना चाहिए।

४. कुछ आचार्यों के मतानुसार यह तभी होना चाहिए जब अण्ड-कोष प्राप्त न हों।

५. पशु के अंग-अंग का बटवारा करके और उनको मृत-व्यक्ति के उन्हीं अंगों पर रखकर और उसे उसके चमड़े से ढककर यह मन्त्र पढ़ना चाहिए कि "हे अग्नि! जब प्रणीता जल आगे ले जाया गया है, तो इस चवक को मत उलट।

६. अपना बायाँ घुटना झुकाकर उसे दक्षिण अग्नि में "अग्नेय स्वाहा, कामाय स्वाहा, लोकाय स्वाहा, अनुमतये स्वाहा" कह कर आहुति डालनी चाहिए।"

७. मृत-व्यक्ति की छाती पर पाँचवीं आहुति दी जानी चाहिए। साथ में यह मंत्र पढ़ना चाहिए—"निश्चय से इससे हजारों का जन्म हुआ है। अब वह इसमें से पैदा हो। स्वर्ग के लिए स्वाहा।"

इत्यादि। ऊपर जो प्रमाण दिये गये, वे सब ऐसे हैं कि उनका खंडन नहीं हो सकता और स्वामी शंकराचार्य का यह कथन मिथ्या हो जाता है कि वैदिक युग में गोमांस-भक्षण नहीं होता था, तथा माननीय खाद्यमन्त्री (अब कांग्रेस के अध्यक्ष) श्री जग-जीवन राम का यह भाषण कि वैदिक युग में गोमांस-भक्षण किया जाता था, सत्य सिद्ध हो जाता है।

चौथा अध्याय

आदिवासी नर-नारियों की दासता

वैदिक युग में जब आर्यों ने (अनार्यों आदिवासियों को पूर्ण-रूपेण हरा दिया, तो उन्हें सेवा का पात्र समझकर दास-दासियों के रूप में अपने धर्म-शास्त्रों में जन-सामान्य के सामने पेश किया।

"हिस्ट्री आफ ऐंशण्ट इण्डिया" अध्याय तृतीय में श्री त्रिपाठी के अनुसार दास या दस्यु द्रविड़ थे, जो भारत के उस भूखण्ड पर बसते थे जिसपर आर्य अधिकार करना चाहते थे। दस्यु (द्रविड़) चप्पा-चप्पा भूमि के लिए लड़े, इंच-इंच पर उन्होंने अपना खून बहाया, परन्तु शत्रुओं ने जब उनके पुर व दुर्ग तोड़ डाले, तब उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। आर्यों ने उनके रक्त से सने अपने बल्ले धरती में गाड़ दिये और पराजितों को अपना गुलाम बना लिया। उनकी नारियों को दासियाँ बना लिया और अपने पुरोहितों को लूट का असीम धन दान में दिया। इन अनार्य दासियों से कक्षीवान, कवष आदि ऋषि जन्मे।

ऋग्वेद में कुछ अनार्य सेनापतियों के नाम भी मिलते हैं, जिन्हें पराजित कर आर्यों ने अपना गुलाम बना लिया था। जैसे पिप्रु, धुर्म, चुमुरि, संबर आदि।

ऋग्वेद के अनुसार जुए में दास, दासियों तथा पत्नियों तक को दाँव पर लगा देते थे। जिसका उदाहरण "द्रौपदी" का जुए के दाँव पर लगा देना काफी होगा।

मनुस्मृति (अध्याय ८ श्लोक ४१४-४१५) के अनुसार मनु के समय "सतयुग" में दासों के बाकायदा बाजार लगते थे। काशी में हरिश्चन्द्र और उनकी स्त्री शैब्या का बिकना इसका उदाहरण है।

खरीदी हुई दासी की सन्तान भी मालिक की सम्पत्ति होती थी। दास सात प्रकार के होते थे—

(१) युद्ध में जीता हुआ, (२) भोजन के लिए आया हुआ, (३) दासी की सन्तान, (४) मूल्य देकर खरीदा हुआ, (५) परम्परागत दास, (६) दण्ड के लिए आया हुआ, (७) दान से प्राप्त।

स्टुअर्ड पिग्गोट ने अपने ग्रन्थ "प्रिहिस्टोरिक इन्डिया" पृष्ठ १७०-७२ में लिखा है, सुमेर और भारत के मध्य ३५०० ई० पूर्व लड़कियों का व्यापार होता था, तथा विदेशी दासियाँ ऊँटों के काफिलों के साथ स्थल-मार्ग से हड़प्पा व कुल्ली आती थीं। मेसोपोटामिया से कपास के बदले भारतीय व्यापारी नर्तकी लाये थे।

ह्वीलर के अनुसार सिन्धु-घाटी की सभ्यता के दौर में प्रत्येक धनिक के घर अनेक क्रीत दास-दासियाँ रहती थीं। ये क्रीत दास मकान बनाने, पानी भरने और खेती के काम में लगाये जाते थे। दास-दासियों को अर्द्ध-नग्न रखा जाता था।

नारद स्मृति में एक वाक्य मिलता है कि कन्या का क्रय-बिक्रय नहीं करना चाहिए। इससे पता चलता है कि पहले कन्यादान देने में असमर्थ गरीब माँ-बाप अपनी विवाह-योग्य लड़कियों को बेच देते थे।

मेगास्थनीज ने भी अपनी भारतीय यात्रा में लिखा है कि पंजाब में विवाह-योग्य लड़कियाँ खरीदी व बेची जाती थीं।

डेविज के ग्रन्थ "डायलाग आफ बुद्ध" में लिखा है कि विजेता लोग पराजितों को आजीवन दास बना लेते थे।

महाभारत के अनुसार गुलामों की बलि दी जाती थी। गिरिव्रज के दुर्ग में सैकड़ों दास-दासियाँ बलि देने हेतु रखी गई थीं, जिन्हें कृष्ण ने पांडवों की अध्यक्षता में मुक्त किया था।

रामायण में अयोध्या तथा लंका के महलों में हजारों दास-दासियों का वर्णन मिलता है।

'ऋग्वेदी कल्चर' पृष्ठ १५७-५८ में श्री ए० सी० दास के अनुसार पणि, जो आर्य होते थे, इटली यूनान आदि देशों से स्त्रियाँ लूटकर ले आते तथा मध्य एशिया और भारत में वेच देते थे। यहाँ उन्हें यूरोपीय स्त्री की अच्छी कीमत मिल जाती थी।

कौटिल्य, स्ट्रेवो, मेगास्थनीज और अशोक का तेरहवाँ शिलालेख हमें मौर्य-युग की दास-प्रथा की झलक दिखाता है।

कुषान-काल में, भारत में, विदेशों से गुलाम बड़ी संख्या में आयात किये गये। इस युग में भारतीय गुलामों का देश के बाहर जाने का कोई विवरण नहीं मिलता, परन्तु विदेशों से उनके क्रय और आयात के विवरण मिलते हैं। जैन-ग्रन्थ "अतंगड़ दशाओ" में दासियों की सूची भी उपलब्ध है।

कौटिल्य के अनुसार दासों को नंगा नहीं रखना चाहिए और यथासम्भव कम पीटना चाहिए। अर्थात् दासों की जानवर-जैसी जिंदगी थी। जब चाहे मालिक उन्हें मारे-पीटे, परन्तु उन्हें रोने तक का भी अधिकार न था।

श्री कृष्ण ने भेंट के तौर पर पांडवों को गहने, कपड़े, कम्बल, दुशाले, सैकड़ों जवान, अलंकृत दासियाँ तथा चतुरंगिनी सेना—हाथी, घोड़े, रथी और पैदल सेना भेजी थी। धर्मराज ने उन्हें ले लिया। (महाभारत आदि पर्व, अध्याय २०२)

महाभारत सभापर्व अध्याय ४९ में युधिष्ठिर ने यज्ञ में हर एक ब्राह्मण की सेवा के लिए तीस-तीस दासियाँ रखी थीं।

महाभारत सभापर्व ५२ में राजा द्रुपद युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में १४ हजार दास-दासियों व स्त्रियों-सहित सेवक भेंट देने के लिए लाये थे।

सभापर्व ६० के अनुसार युधिष्ठिर जुए में अन्य सम्पत्ति के साथ एक लाख दास व एक लाख दासियाँ भी हारे थे।

महाभारत विराट पर्व अध्याय ८६ में धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए कहते हैं कि हाथी, वाहन, घोड़े, मेढ़ों के साथ एक सौ दास और एक सौ दासियाँ दूँगा। दासियाँ नौजवान और ऐसी होंगी जिनके कोई बाल-बच्चा न हुआ हो।

नहपान के कार्ले अभिलेख में, युद्ध में बौद्ध स्त्रियों के लूटे जाने का उल्लेख है। नहपान ने नदी के तट पर एक-एक ब्राह्मण को आठ-आठ स्त्रियाँ दान में दी थीं।

महाभारत आदि पर्व २०१ में द्रुपद ने सुसज्जित एक-एक सौ जवान दासियाँ एक-एक दामाद को दीं। पांडव इन दासियों और द्रौपदी को लेकर द्रुपद के यहाँ रहने लगे।

कालिदास ने गुप्त राजा के प्रासाद में यवन दासियों का वर्णन किया है।

अजन्ता के भित्ति-चित्रों में भी ईरान, यवन, सिंहल द्वीप, तातार, अफ्रीका तथा अफगानिस्तान के दास-दासियों के चित्र अंकित हैं।

हर्षचरित तथा वृहद् कथा-कोष में ११वीं शताब्दी तक गुलामी-प्रथा मिलती है। सेना के साथ गुलामों के चलने का उल्लेख है।

भगवती-आराधना की ५६७ वीं गाथा में गुलामों के खून का वर्णन मिलता है।

डाक्टर के० एम० मुन्शी ने लिखा है कि एक बार आर्यों के इतिहास में यह प्रश्न उठा कि इन हारे हुए दस्युओं का क्या किया जाय और समाज में इनका क्या स्थान होगा ? इसी प्रश्न को लेकर विश्वामित्र व वशिष्ठ में वाद-विवाद हो गया था। क्योंकि वशिष्ठ रक्त-शुद्धि के अनुयायी थे, परन्तु विश्वामित्र उन्हें आर्यों में मिलाने का रसायन तैयार कर रहे थे।

बाद में इसी दस्युवर्ग को चतुर्थ वर्ण बनाकर 'शूद्र' का नाम दे दिया, जो केवल सेवापात्र ही बनकर हजारों साल की परतंत्रता से समय-समय पर कराहता हुआ दिखाई देता है। इसे किसी भी तरह का अधिकार न था। कोई अधिकार था, तो केवल इतना कि वह मालिक की तन-मन से सेवा करे, ताकि मालिक खुश होकर अच्छा खाने को दे दे और मारे-पीटे नहीं।

दक्षिण भारत में गुलामी की प्रथा के विषय में एल० डी० बर्निट द्वारा अनुवादित "नायाधाम कथाओं" में कहा गया है कि मरुकच्छ (भड़ौच) गुलामों के व्यापार का अच्छा केन्द्र था। यहाँ देशी-विदेशी दासियाँ खूब मिलती थीं।

दसवीं शती के अंत तक तो गुलाम-दासियाँ राजपूतों की सामाजिक व्यवस्था की आवश्यक अंग बन गई थीं। वेश्याएँ तक खरीदी व बेची जाती थीं।

डाक्टर मोतीचन्द केअ नुसार हर्षवर्धन-काल में विदेशों से इन्जीनियर खरीद कर बुलवाये जाते थे। इस युग के दास ही जहाजों को खेते व मरम्मत करते थे, तथा तिब्बत सीमा-प्रान्त के मध्य और आसाम व सुवर्ण-भूमि के मध्य गुलामों का आयात-निर्यात होता था। इसका बदला हुआ रूप हमें विदेशी स्पेशलिस्टों से मिलता है कि वे हमारे भारतीय इंजीनियरों और टेक्नीशियनों को सिखाने-बताने आते हैं या जाते हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि राजा जयचंद के महलों में दासियाँ भरी रहती थीं। वहाँ उनकी पीठ पर कोड़े लगाये जाते थे। बौद्ध-धर्म के पतन के कारण यह भी माने जाते हैं कि जब राजा लोग भिक्षुओं को दासियाँ दान में देने लगे, तो वे दासियों के चक्कर में बौद्ध-धर्म-दीक्षा को भूल गये तथा बुद्ध-धर्म की पवित्र आस्था मानव-समाज से टूट गई।

बौद्ध ग्रन्थ "विनय सूक्त" में ऐसे निर्धन व्यक्तियों का उल्लेख है

जो निर्धनता के कारण स्वतंत्र जीवन त्याग, अपने आपको बेच देते थे।

शंख-जातक में एक ब्राह्मण की कथा दी गई है, जो बेचने के लिए व्यापारिक वस्तुओं के साथ-साथ अनेक दास-दासियों को भी जहाज में सुवर्ण-भूमि ले गया था।

डाक्टर दास के अनुसार स्त्री-पुरुषों को पकड़कर गुलाम बनाने के लिए आर्य सेना-सहित बाकायदा अभियान करते, और अनार्यों (आदिवासियों) के गाँव घेरकर स्त्री-पुरुषों को पकड़ लाते। पुरुष-दास खेतों में काम करते, पशु चराते, रखवाली करते, यानी घर से बाहर का कार्य करते थे, तथा गुलाम-स्त्रियाँ घर के अन्दर का कार्य करतीं, उनकी काम-पिपाशा शान्त करतीं, यज्ञ आदि के अवसरों पर पुरोहितों को दान देने के काम में आती थीं।

एक ऐतिहासिक कथा के अनुसार गर्भवती दासी के साथ एक ऋषि द्वारा बलात्कार किया गया। फलस्वरूप वह दासी मर गई, क्योंकि वह बलात्कार जबरदस्ती किया गया था। यह उस समय के मानवीय जीवन का सामाजिक स्वरूप है। कोई भी आर्य (ब्राह्मण) देवता किसी भी नारी को पकड़कर बलात्कार कर सकता था। दासी नारियों का तो सब कुछ (पति, रखवाला) मालिक ही होता था। मालिक जो कहता, वही उन्हें करना पड़ता था।

भारतवर्ष में दास-प्रथा की झलक हमें सिन्धु-घाटी से प्राप्त एक शिला-लेख (मुद्रा-लेख) पर मिलती है। मार्शल के अनुसार इस मुद्रा-लेख में एक औरत बाल बिखराये तथा दोनो हाथ ऊपर उठाये नग्न शरीर से चीख रही है, क्योंकि एक मनुष्य उसके पास खड़ा हाथ में खड्ग व डंडा से मारने की मुद्रा में दिखाया गया है।

कालीदास के विवरणों और अजन्ता के भित्ति-चित्रों में विदेशी गुलामों का अंकन खूब मिलता है।

समुद्रगुप्त की प्रयाग-स्थित प्रशस्ति में भी शक-काल तक सिंहल-देशी सुन्दर दासियों के भारत में आने का उल्लेख है।

गुप्त-काल में काशी गुलामों के बाजार का बहुत बड़ा केन्द्र था। एक बार काशी के बाजार में एक ब्राह्मण एक राजपूत को बेचने के लिए लाया था, परन्तु वह पकड़ा गया।

भारतीय विधान-निर्माता स्वर्गीय बाबासाहेब अम्बेडकर की इस बात का खंडन कोई नहीं कर सका है कि "भारत का अछूत-वर्ग ब्राह्मणों की इस सुविचारित कूटनीति का ही परिणाम है।"

एक कथा इस प्रकार है कि एक यूरोपियन ने एक लड़की खरीदी। ६ मास तक उसे खिलाया-पिलाया। जब हृष्ट-पुष्ट हो गई, तो उसके शरीर का खून जोंक को लगाकर निकलवाया। बाद में निकले खून से किरामदाना बनाया। इसको गर्म कपड़े रँगने के काम में लिया जाता था। मतलब यह कि नारी का कोई जीवन न था। मानवता आर्य-देवताओं के अन्दर से मर गई थी। मानव जीवन का मूल्य न समझकर जब चाहे जिन्द रक्खे, खरीदे, बेचे, भूखा मार दे, या पीट-पीट कर मार दे!

वैसे नारी की दासता की कहानी बड़ी ही पुरानी व कितने ही ढंगों से कही गई दास्तान है। न वह किसी की बहू थी, न वह किसी की भार्या थी। जो उसे पकड़कर ले जाता, उससे बलात्कार, अत्याचार करता। उसे वह बिना मुंह खोले सह लेती। एक मूक (गूंगे) पशु की भाँति कि चाहे उसका स्वामी उसे कुछ भी दुःख दे, वह सह लेता है। शोषण की भट्टी में पिस-पिसकर, अत्याचार सहकर, साँसें तोड़ देती थी। परन्तु मनुष्य-रूपी (देवता) के सामने कुछ नहीं कहती। नारी (दासी) को वह पाठ सिखाया, जो उसे शोभा दे।

नारी की यही कहानी, आंचल में दूध, आँखों में पानी।

विजेता लोगों की नीति रही है कि विजित लोगों की सम्पत्ति को हड़पकर उन्हें अपना गुलाम बना लेना और उन्हें ऐसी दशा में

पहुँचा देना कि कभी पनप न सकें तथा रंग बिरंगी बातें बनाकर उनके मन को फुसलाये रहना। आर्य विजेताओं ने भी ऐसा ही किया। जब उनका प्रभुत्व इस देश में जम गया, तो उन्होंने जनता को चार भागों में विभाजित किया। कुछ चतुर लोग विधायक, धर्म गुरु या पुरोहित, सहित्य निर्माता और न्यायाधीश बने। इस वर्ग का नाम ब्राह्मण रखा गया। कुछ लोग सिपाही, सामन्त और राजा बने जिनका काम था शत्रुओं से युद्ध करना, ब्राह्मणों के बनाये विधि-विधानों को तलवार की ताकत से जनता को मनवा देना और जो उनके विरुद्ध आचरण करे, उसे धर्म विद्रोही कहकर उसका संहार कर देना। इस वर्ग का नाम क्षत्रिय रखा गया। तीसरा वर्ग उन्होंने व्यापारियों का बनाया जिनका काम था, वाणिज्य-व्यापार महाजनी या सूदखोरी करना, श्रमिक जनता अर्थात् किसान, मजदूर और शिल्पकारों से उत्पादन कराना और ब्राह्मणों को दान देना तथा यज्ञादि कर्मकाण्डों एवं ब्राह्मणों के उठाये प्रत्येक काम में खुले दिल से धन की सहायता करना। इस वर्ग का नाम वैश्य रखा। चौथे विशाल समूह का नाम उन्होंने शूद्र रखा जिसमें प्रायः भारत के सभी मूल निवासी थे। ये लोग कृषक, शिल्पकार और श्रमिक थे। शूद्रों के उन्होंने दो विभाग किये : शूद्र और अतिशूद्र। शूद्रों को सेवा और दासता के लिए अपने साथ रखा और कड़ी मेहनत या गन्दे पेशे करने वाले अतिशूद्रों को अछूत बनाकर बस्ती के बाहर बसने को विवश किया।

इस समाज व्यवस्था को उन्होंने ईश्वरीय आज्ञा कहकर प्रचारित किया, ताकि सब लोग इसे पवित्र धर्म मानकर इसके अनुरूप अपना जीवन यापन करें।

जिन लोगों ने इस आर्य ब्राह्मणी व्यवस्था को नहीं माना और इसका विरोध किया उनके साथ आर्य-राजाओं और आर्य

देवताओं अथवा उनके अवतारों ने युद्ध करके उनका संहार किया तथा उनका साथ देने वाली जनता के लिए कठोर शासन विधान बनाकर उनका दमन करके उन्हें अपना दास बना लिया।

आर्य व्यवस्थापकों के ये काले कानून आज भी उनके धर्म-शास्त्रों, स्मृतियों और रामायण, महाभारत एवं पौराणिक-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। आर्य हिंदू-राजाओं के राज्य में, जिनके विधायक और गुरु पुरोहित ब्राह्मण थे। इन विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया जाता था। पाठकों की जानकारी के लिए दो-चार उदाहरण देकर यह अध्याय समाप्त किया जायगा।

श्री घुरे महोदय ने मराठा शासन की व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखा है कि साधारण सामाजिक व्यवहार में महार को, जो कि एक अछूत है, सड़क पर थूकने का अधिकार नहीं था। क्योंकि यदि उसके थूक से किसी सवर्ण हिन्दू का पैर छू जाय, तो वह अशुद्ध हो सकता था। इसलिए वह जब सड़क पर चलता था तो थूकने के लिए अपने गले में मिट्टी का बर्तन लटकाकर चलता था, जब सार्वजनिक मार्ग से गुजरता था, तो चलते समय अपने कमर से एक कँटीली बबूल की झाँकर बाँधकर चलता था, जिससे उसके पीछे बने पदचिन्ह मिटते चले जायँ और कोई ब्राह्मण आदि उच्च जाति का व्यक्ति पदचिन्ह पर पैर पड़ने से अशुद्ध न हो जाय।

विल्सन महोदय ने लिखा है कि जहाँ तक स्वच्छ वस्त्रों और आभूषणों का प्रश्न है, अछूतों के लिए समस्त भारत में निषेध था। न तो वे स्वच्छ कपड़े पहन सकते थे और न लोहे के अतिरिक्त कोई आभूषण ही पहन सकते थे। मद्रास प्रान्त के विषय में लिखा है कि तियान और अन्य नीच जाति के व्यक्तियों और उनकी स्त्रियों को कपड़ा न पहनने और शरीर के ऊपर के अर्ध भाग को नंगा रखने के लिए बाध्य किया जाता था। विवाह

के अवसर पर अछूतों को ढोल बजाने की अनुमति नहीं थी, वे पैरों में जूते और सैन्डिल नहीं पहन सकते थे और न अपने घरों को लिपाई-पुताई करके स्वच्छ ही रख सकते थे।

श्री जे० विल्सन ने अपनी पुस्तक "ह्वाट कास्ट आर" के द्वितीय संस्करण में व्यक्त किया है कि दक्षिण देश में धीरे-धीरे व्यवस्था ऐसी हुई कि राह चलते समय ब्राह्मण के आगे चलकर एक आदमी हीन जाति के लोगों को हटाया करता था। ब्राह्मण को देखकर लोग सवारी से उतरने के लिए मजबूर होते थे। शूद्र और ब्र.ह्मण के घर एक पंक्ति में नहीं बन सकते थे। अन्य जाति की स्त्रियाँ अपनी नाभि के ऊपर का अंग वस्त्र से नहीं ढक सकती थीं। उल्लादन-नामक दक्षिण भारत की एक जाति अछूत मानी जाती थी। यदि वह चालीस हाथ के भीतर किसी हिन्दू के पास आ जाय, तो वह दूषित हो जाता था। दक्षिण में जाति-भेद का इतना बोलबाला था कि वहाँ नायर के छूने से ब्राह्मण अपवित्र हो जाता था। बढ़ई-लुहार १६ हाथ, ताड़ी बेचने वाला २४ हाथ के अन्तर्गत आ जाय, तो ब्राह्मण आदि उच्च जातीय अपवित्र हो जाते थे और यदि ये किसी जलाशय के नजदीक से गुजर जायँ, तो जलाशय भी अपवित्र माना जाता था।

श्री जे० भट्टाचार्य ने लिखा है कि उत्तर प्रदेश में नीच जातियों के व्यक्ति ब्राह्मणों को अधिक श्रद्धेय और पूजनीय स्थान देते थे। वे ब्राह्मण की परछाई तक नहीं काट सकते थे। यहाँ तक कि विशेष उत्सवों पर वे अपना भोजन तब तक नहीं खा सकते थे, जब तक कि किसी ब्राह्मण के जूते का अगला हिस्सा उनके पीने के पानी में न डुबोया जाय और वे उस पानी से आचमन न ले लें। दूसरी तरफ ब्राह्मण अछूतों को इतना नीच समझता था कि अछूतों के घर में रखी हुई देवताओं की मूर्तियों को भी झुकना

अपना अपमान समझता था। जब कोई शूद्र अपने घर धार्मिक कृत्य करता था, तो कथा-वाचन के लिए ब्राह्मण को बुलाया जाता था। ब्राह्मण अपने को इतना उच्च समझता था कि वह भगवान् की कथा भी, शूद्र के दरवाजे पर न कहकर, किसी सवर्ण हिन्दू के दरवाजे पर जाकर कहता था।

श्री एच० एच० रीजले महोदय ने अपनी पुस्तक ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स आफ वंगाल" में लिखा है कि वहाँ की जनता ब्राह्मण और शूद्र दो भागों में विभाजित थी। शूद्र दो प्रकार के थे जलाचरणी और अस्पृश्य। अस्पृश्य-इतना नीच माना जाता था कि वह न कुयें से पानी भर सकता था और न उन स्थानों से गंगा जल छू सकता था जहाँ कि ब्राह्मण स्नान करते थे। यही हाल विहार और उड़ीसा का भी था।

उपर्युक्त उद्धरणों से पाठक आदिवासी नर-नारियों की दयनीय दासता का अनुभव कर सकते हैं। इन उद्धरणों में जैसा वर्णन हुआ है, वह उन स्थानों की प्रचलित सामाजिक दशा है। हिन्दू शास्त्रों और पुराणों में इसी प्रकार के विधि विधान हैं जिनके अनुसरण से इन आदिवासी नर-नारियों की यह दशा हुई है। ये सारे काले कानून अब भी इन हिन्दू-शास्त्रों में मौजूद रहने से यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दू विधायकों और हिन्दू शाशकों तथा हिन्दू पूँजीपतियों ने भारत भूमि में पराजित और दुर्बल मानवता पर जघन्य सामाजिक अत्याचार नहीं किये। इस छोटी पुस्तक में आदिवासी नर-नारियों की दासता का यह संक्षिप्त दिग्दर्शन है।

पाँचवाँ अध्याय

धार्मिक विद्वेष और प्रतिशोध की नीति

हिन्दू बार-बार कहते हैं कि उनका धर्म बड़ा ही सहिष्णु है। वह कभी किसी धर्म की बुराई नहीं करता, उसने कभी किसी धर्म पर अत्याचार नहीं किया। यदि संसार के सभी धर्मों से अच्छा और पवित्र कोई धर्म है, तो वह हिन्दू धर्म है। परंतु इतिहास और धर्म-शास्त्रों के पन्ने पलटें तो पता चलेगा कि हिन्दू-धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म के खातिर क्या कुछ नहीं किया ?

ऋग्वेद (१, १०, १-१) में कृष्ण के देश की कुछ गर्भवती स्त्रियों के इन्द्र द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। यहाँ यह कहना कठिन हो जाता है कि कृष्ण महाभारत का ही कृष्ण था या दूसरा ऋग्वेद का। क्योंकि ऋग्वेद में कृष्ण को अनार्य बताया गया है, किन्तु हरिवंशपुराण में वह पूजनीय है। इससे इतना जरूर पता चलता है कि यह ऐतिहासिक सत्त है कि इन्द्र का कृष्ण के साथ संघर्ष, धार्मिक प्रश्नों का ही संघर्ष था। क्योंकि कृष्ण बलि देने के विरोधी थे और इन्द्र बलि देने के समर्थक। जहाँ तक कृष्ण के जन्म का सम्बन्ध है, वह हमें 'मथुरा परिचय' नामक पुस्तक से प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हरियश्व लवण कुटुम्ब की पाँचवीं पीढ़ी में हुआ था। जैसे कि लवण 'मधु' पुत्र अनार्य था और हरियश्व अवधपुरी के नरेश का आर्य-पुत्र था जिसे गंगा-तट से मधु उठा लाया था। लवण की बहन की शादी हरियश्व से हो जाने के बाद लवण-हरियश्व साले-बहनोई मिलकर मधुपुरी (मथुरा) में राज्य करने लगे। देवताओं द्वारा वैदिक यज्ञों के नाम पर किये जाने वाले हिंसा, पाप,

बलात्कार पर विद्रोह हुए। परन्तु समय-समय पर बदलती धार्मिक परम्पराओं और खान-पान के सामने यह अनर्थ टिक न सका। ईसा के ५००-६०० वर्ष पूर्व विद्रोह ने भयानक रूप धारण कर लिया था। इस विद्रोह का नेतृत्व जैन और बौद्ध-धर्मों ने करके आर्यों को अपने धर्म का रूप बदलने को मजबूर कर दिया।

दक्षिण में जैन-धर्म के सैकड़ों मंदिर थे, जो अब शैवों के मंदिर हैं। इन्हें शैव-मत के राजाओं ने ज़बरदस्ती रूपांतरित किया था।

शैव साधु अप्पर ने अपने सम-कालीन राजा महेन्द्र वर्मन को शैव-धर्म की दीक्षा दी। इसके पश्चात् महेन्द्र वर्मन ने जैनों पर भयानक अत्याचार कराये। पाटलीपुत्र तिरुपाव में जैन-मंदिरों को नष्ट करके उसके स्थान पर शिव-मंदिर की स्थापना की थी। "धैरिया पुराणम" में इसकी पूर्ण कथा दी गई है।

सातवीं शती से ब्राह्मण-राजा शशांक ने बौद्धों पर भयानक अत्याचार किये। प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसाँग ने अपने यात्रा-विवरण में शशांक के अत्याचारों की कथा लिखी है। शशांक ने बुद्धगया के विहारों को भूमिसात कर दिया था। बौद्ध-धर्म का अनुयायी एक भी जिन्दा न छोड़ा था। अनेक स्थानों पर बौद्धों का कत्ले-आम किया गया था।

'दिव्यावदान' नामक बौद्ध-ग्रन्थ तथा तिब्बती लामा तारानाथ के इतिहास में लिखा है कि पुष्यमित्र शुंग ने पाटलीपुत्र और जलंधर के समस्त बौद्ध-विहारों को जला डाला था, और शाकल में उसने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति जितने बौद्ध-श्रमणों के सिर काटकर लायेगा, उसे प्रति सिर सौ सोने के सिक्के पारितोषिक-स्वरूप दिये जायेंगे।

सन् १०६५ ई० में कृष्णमिश्र नामक दण्डी परिव्राजक था। इसका लिखा हुआ "चन्द्रोदय नाटक" आज भी उपलब्ध है। इसके अनुसार एक कापालिक ने एक श्रमण-भिक्षु को तलवार का

भय दिखाकर तथा स्त्री व मदिरा का लालच देकर शाश्वतवाद पर एक ग्रंथ लिखावाया। इसका पता हमें सतपथ-ब्राह्मण, पाणिनि व्याकरण और महाभाष्य से मिलता है। पाणिनि ने पाँच शाश्वतिक विरोध बताये हैं। जिनमें शाश्वतिक विरोध होता है, वे शब्द एकवचन द्वन्द्व समास कहलाते हैं। जैसे कि श्रमण-ब्राह्मण। श्रमण और ब्राह्मण में शाश्वतिक विरोध के रहते हुए भी एक समस्त शब्द बन गया, 'श्रमण-ब्राह्मण'। इत्यादि।

स्कन्दगुप्त सम्राट ने जैसा किया, उसी का अनुसरण राजा सुधन्वा ने किया। सुधन्वा ने जगतगुरु शंकराचार्य की इच्छा से अपने भृत्यों को आज्ञा दी कि रामेश्वरम् के सेतु से हिमालय पर्वत तक बौद्धों को मार डालो। उनके बूढ़ों व बच्चों तक को न छोड़ो। और जो उनको मारने से हिचके, उसको भी मार डालो। वस्तुतः बौद्ध-धर्म शंकर के शास्त्र से इतना परास्त नहीं हुआ जितना कि सुधन्वा व स्कंदगुप्त के शस्त्र के आघात से। वह कितनी अभूत-पूर्व सहिष्णुता-उदारता और परोपकारी था, जिसे पुष्यमित्र शुंग स्कंदगुप्त और सुन्धवा ने किया था। महत्मा गांधी नैष्ठिक हिन्दू थे। हिन्दुओं की शक्ति और बहुसंख्यक की रक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। महात्माजी ब्राह्मणों से बहुत डरते थे, और उनका बड़ा सम्मान करते थे। किन्तु ऐसे उपकारी की भी हत्या एक ब्राह्मण के ही द्वारा हुई। कोर्ट में यह सिद्ध नहीं हुआ कि उस हत्यारे के पीछे किसका हाथ था, लेकिन जनता के मनों में भाषित हो ही गया।

महावंश पुराण के ६३ परिच्छेद में लिखा है कि सोलहवीं शताब्दी में सिंहलद्वीप के राजा जयसिंह ने अपने पिता की हत्या करके गद्दी पर अधिकार कर लिया। बाद में बौद्ध-संघ को बुलाकर पितृ-वध का प्रायश्चित करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु बौद्ध-संघ ने इस भीषण पाप का प्रायश्चित कराने को असमर्थता प्रकट

की। इस पर राजा ने शैव-मत ग्रहण करके बौद्धों पर इतने अत्याचार किये कि चार-पाँच वर्ष में पूरे सिंहलद्वीप में एक भी बौद्ध को जिंदा न रहने दिया। बौद्धों के बड़े-बड़े ग्रन्थागार उसने अपने हाथों जला दिये थे। हिन्दू-धर्म की सहिष्णुता का यह दूसरा उदाहरण है।

मद्रास के टिन्नवेली जिले में कुलुवेतल नामक एक उत्सव अभी तक मनाया जाता है। इसमें एक मनुष्य का कृत्रिम सिर कील पर लगाकर उसे जलूस-रूप में निकाला जाता है। यह सिर तामिल में 'समणाल' कहलाता है।

ग्यारहवीं शती में मैसूर के राजा विरुदेव विष्णुवर्धन ने रामानुजाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर सहस्रों जैनियों को तेल की घानी में पिरवाकर मार डाला था। रामानुजाचार्य को 'धर्म के नेता' कहते हिंदू अब भी अघाते नहीं हैं।

मदुरा के प्रसिद्ध मीनाक्षी मंदिर में भी शैव और वैष्णवों द्वारा जैनों पर किये गये हजारों अत्याचारों के चित्र अब भी मौजूद हैं।

आर्य-राजा परीक्षित के पुत्र जन्मेजय के द्वारा किये गये भीषण नाग-यज्ञ में महान् नाग-जाति को स्त्री-बच्चों सहित जीवित जला डाला गया था।

भारतीय संस्कृति के आदर्श, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र के राज्य में भी ऐसे ही कार्य होते थे। खुद रामचंद्रजी ने शंबूक ऋषि का सिर काट दिया था, क्योंकि वह शूद्र होकर तप कर रहा था। शूद्र होने के कारण उसे तप करने का अधिकार न था। इसकी विस्तृत कथा भवभूति के उत्तर रामचरित में पाई जाती है।

आर्यों ने भारत-भूमि पर अधिकार करके, आदिवासियों को विधान के द्वारा चतुर्थ वर्ण शूद्र और दास बनाया। वह वैधानिक चलन आज भी रूप बदलकर दिखाई देता है।

"पूजिय विप्र सकल गुण-हीना, शूद्र न गुण-गण-ज्ञान-प्रवीना"

तुलसीदासजी भक्ति-युग में पैदा हुए। उन्हें यह लिखने की क्या जरूरत पड़ी। उन्होंने केवल ब्राह्मण-वर्ण को ही ऊंचा नहीं वताया, वरन् शूद्र वर्ण को भी वही थपाट मारी, जो रामचन्द्रजी ने शम्बूक का वध करके मारी थी। तुलसीदासजी से कुछ ही समय पूर्व रविदास, जो शूद्र था, मीराबाई का गुरु था। उसे भी मरवाकर ऊपर-लिखी तुलसीदास की व्यवस्था चरितार्थ की गई, ताकि हिन्दू-धर्म की मर्यादा न टूटे। शूद्र केवल सेवा ही करे, विद्या-अध्ययन और युद्ध-कला न सीख सके।

युद्ध-विद्या सीखने के उदाहरण में द्रोणाचार्य की गुरु-दक्षिणा की कथा है। एकलव्य शूद्र होने के कारण द्रोणाचार्य की केवल मूर्ति बनाकर घर में ही युद्ध-विद्या सीखता था। कुछ समय बाद जब गुरु द्रोणाचार्य को पता चला, तो वे गुरु-दक्षिणा लेने पहुँच गये, और गुरु-दक्षिणा में उसके दाहिने हाथ का अँगूठा माँग लिया। जिससे एकलव्य की धनुर्विद्या समाप्त हो गई।

मनुजी आर्य-राजा थे। उनकी स्मृति ब्राह्मणों की महत्ता से भरी पड़ी है।

एक बार भारतीय लोक-सभा में मान्यवर दादासाहेब वी० के० गायकवाड़ एम० पी० ने मनुस्मृति को फाड़कर कहा था कि जिस धर्म में मानवता की कोई कीमत नहीं, उस धर्म-शास्त्र की इस लोकतंत्र में कोई आवश्यकता नहीं।

वैसे तो बाबासाहेब डाक्टर अम्बेडकर रामायण, मनुस्मृति आदि हिंदू धर्म-शास्त्रों का विच्छेदन कर चुके थे, किंतु उत्तर-प्रदेश विधान सभा में रामायण को भी जलाया गया था। तब भी हिंदू आँख खोलकर चलते नहीं। सोचते हैं कि हजारों वर्षों से जो हमारी सेवा करता आया है, वह हमारे बराबर बैठ या बैठेकर खाये-पीये, यह हम सहन नहीं कर सकते।

मनुजी ने अपनी स्मृति में भारत की बहुसंख्यक जनता को वर्णसंकर (औलाद हरामी) बनाया। मनुस्मृति (१०, ८) के अनुसार ब्राह्मण से शूद्र कन्या में निषाद पैदा हुआ तथा निषाद से कारावरी (करवल) स्त्री में चर्मकार पैदा हुआ। यथा—

"कारावरी निषादस्तु चर्मकार: प्रसूयते।"

याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय १, श्लोक ५३) और मनुस्मृति (अध्याय १०, श्लोक ६) में लिखा है—

"क्षत्रियात् विप्र कन्यायां सूतो भवति जातित:।"

सूत नामक एक प्रतिलोम वर्णसंकर का नाम है, जो क्षत्रिय के वीर्य से ब्राह्मणी कन्या से पैदा हुआ था। यथा—

सूताद् विप्रकन्याया जातो वेणुक उच्यते।
नृपायामेव वस्यैव जातो य: चर्मकारक:॥

क्षत्रिय से ब्राह्मण की लड़की में वेणुक अर्थात् बँसफोड़ या भंगी पैदा हुआ और वेणुक से क्षत्रिय लड़की से चमार पैदा हुआ।

जैसा कि बाबासाहेब अम्बेडकर ने अपने लेखों व भाषणों में कितने ही बार कह दिया था कि हिन्दू-धर्म विश्व में एक ही धर्म है, जिसमें पशुओं-पक्षियों की कीमत है, परन्तु मनुष्य की कोई कीमत नहीं। हिन्दू कुत्ते-बिल्ली पालकर उन्हें घर में रखते हैं, परन्तु एक शूद्र की परछांई पड़ जाने पर भी उन्हें नहाना व कपड़े बदलना पड़ता है।

इसी कारण उन्होंने यह घोषणा कर दी थी कि "मैंने हिन्दू-धर्म में जन्म अवश्य लिया है परन्तु मैं हिंदू रहकर मरूँगा नहीं।" और अपनी इस घोषणा के अनुसार वह हिन्दू-धर्म त्यागकर बौद्ध हो गये।

वह हमें गुरुमंत्र दे गये हैं कि जब तक हमारा दलित व पिछड़ा समाज अपने पैरों पर खड़ा होकर इन शोषकों का सामना न करेगा, तब तक ये शोषक हमारा शोषण करते ही रहेंगे।

अधिकार कभी माँगने से नहीं मिलते, उन्हें छीना जाता है।

शूद्रों का सिद्धांत मार खाना व अत्याचार सहना नहीं होना चाहिए। अत्याचारों को सह लेना भी पाप है।

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व वित्त-मंत्री श्री रामस्वरूप वर्मा द्वारा दिये गये आँकड़े इन सब सवालों के द्योतक हैं। उत्तर प्रदेश में ३०-३१ करोड़ रुपया हर साल ब्राह्मणों द्वारा धर्म, कथा, और यज्ञ के नाम पर गबन किये जाते हैं, जिससे उनका भरण-पोषण होता है।

क्या देश की राष्ट्रीयता इन्हीं कथा-यज्ञों आदि धार्मिक कामों पर निर्भर है? एक तरफ़ हम अपने भारतीय नागरिकों को कपड़ा, मकान, अन्न देने में असमर्थ हैं, दूसरी तरफ करोड़ों रुपयों का घोटाला होता है। इस तरह हम देश को अमरीका और रूस के समक्ष किस तरह ला सकेंगे।

समय-समय पर हो रहे धर्म-परिवर्तन इस बात के द्योतक हैं कि हिन्दू-धर्म कितना सहिष्णु है। दिन-पर-दिन हिन्दू-धर्म का ह्रास हो रहा है। इस दशा को देखकर राष्ट्रपिता गांधीजी ने कहा था कि "यदि हरिजनों को न अपनाया गया, तो हिन्दू-धर्म खतरे में है।" इसका प्रमाण बौद्ध-धर्म का विकास, ईसाई धर्म में परिवतन, मुसलिमों की बढ़ती संख्या इत्यादि है। यदि हिसाब लगाया जाय, तो भारत के ईसाई, मुसलमान, आदि की संख्या का ५० प्रतिशत भाग हिन्दू-धर्म का ही है, जिन्हें हिन्दू-धर्म अपना न सका था।

भारतीय हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत रहकर समान अधिकार पाना तथा ऊँच-नीच, छुआछूत का खात्मा होना समय व समाज की पुकार मात्र है।

२३ अक्टूबर १९६८ में बम्बई में बौद्ध-धर्म सम्मेलन हुआ था। इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया था। अपने उद्घाटन-भाषण में उन्होंने आश्वासन भी दिया था कि

भारतीय नव-दीक्षित बौद्धों के संरक्षण के सम्बन्ध में वे अवश्य कोशिश करेंगी।

यहाँ यह कहना अयुक्त न होगा कि यदि हरिजनों व शूद्रों ने ऊबकर हिन्दू-धर्म त्याग दिया और हिन्दू-गुलामी से अपने को विमुक्त कर लिया, तो हिंदुओं को सारे नीच सेवा और कड़ी मेहनत के काम खुद करने पड़ेंगे। दस-बारह साल पहले की बात है कि मथुरा म्युनिसिपैलिटी के सफाई कर्मचारियों (भंगियों) ने हड़ताल कर दी थी। उस समय मथुरा के प्रसिद्ध मंदिर द्वारिकाधीश के सामने सड़क पर एक-एक गज मैला इकट्ठा हो गया था। उस समय झख मारकर चौबे लोगों ने गन्दगी को साफ किया था।

कर्मयोग की प्रधानता को ध्यान में रखकर ही मनुष्य अपना भविष्य अपने हाथों बना सकता है। जो अधिकार शक्ति से पाना है, उसे भीख माँगने की भाँति माँगना ठीक नहीं। सरकार कब तक संरक्षण देगी, कब तक कुत्ते की भाँति दुम हिलाकर खाते रहेंगे। अपने पैरों पर खड़े होकर खुद करो। धर्म और मानवता को अपमानित करनेवाली शक्ति को उखाड़कर फेंक दो।

एक कहावत है कि घूस देनेवाले और लेनेवाले दोनो ही गुनहगार होते हैं। इसी तरह अत्याचार करनेवालों से ज्यादा दोषी वह है जो अत्याचार सहता है। अत्याचारों का सामना करना सीखो, पर यह कभी जबान पर न लाओ कि वह मुझे मारता है, मेरे ऊपर अत्याचार करता है। जब तक तुम स्वयं अपना संरक्षण करना न सीखोगे, तब तक यही अपमानित जीवन भोगना पड़ेगा। अपमानित जिन्दगी से ज्यादा हिन्दू-धर्म कुछ नहीं दे सकता। क्योंकि हिंदू-धर्म द्वेष, दंभ और मानव-घृणा का धर्म है

छठा अध्याय

धर्म-नीति, आचरण और प्रतिक्रिया

आर्य-ऋषियों ने, जिनके उत्तराधिकारी ब्राह्मण हैं, भारत के जिन आदि-निवासियों को दस्यु, दास, दैत्य, दानव, राक्षस आदि कहा, प्रभुत्व पाने के बाद उन्हें क्या सिखाया ? आर्य-व्यवस्थापकों ने सदाकाल उन्हें अपना सेवक और दास बनाये रखने के लिए रंगों के भेद से चातुर्वर्णी व्यवस्था बनाई, जिसमें इनकी उत्पत्ति वर्णसंकरी, शूद्र और अतिशूद्र बताकर इनके कर्मों का अलग-अलग विधान किया, और नाना प्रकार के धर्म-कर्म, यज्ञ, श्राद्ध, तर्पण, पिंडदान, कथा-पुराण, तीर्थ-व्रत आदि का सृजन करके इन्हें ब्रह्मजाल में फँसा लिया, और सबका पौरोहित्य अपनी मुट्ठी में रखा।

दैवाधीनं जगत् सर्वं मंत्राधीनं च देवताः।
ते मंत्राः ब्राह्मणाधीनं, तस्मात् ब्राह्मण देवता ॥

ब्राह्मणों ने घोषणा कर दी कि यह सारा जगत देवताओं के अधीन है और देवता मंत्रों के वश में हैं, तथा मंत्र ब्राह्मणों के अधीन हैं, इसलिए इस पृथ्वी पर ब्राह्मण ही देवता है। भूदेवों की सेवा-पूजा से ही कल्याण होगा। भूसुरों की आज्ञा के अनुसार चलना ही सबका धर्म है। जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त जीवन के समस्त द्वारों पर ब्राह्मण बैठ गये। जन्म, मुण्डन, कर्णछेदन, विद्यारंभ, विवाह, मृत्यु आदि के सभी संस्कार ब्राह्मण-गुरु के बिना पूरे नहीं हो सकते। सारी जरूरतों और मुश्किलों के निवारण के लिए ब्राह्मणों की शरण में जाओ और उनसे उपाय पूछो। ब्राह्मण जैसी आज्ञा दें, वैसा ही श्रद्धापूर्वक करो।

पानी नहीं बरसता है, तो ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ कराओ; यदि कोई महामारी फैली है, तो उसे दूर करने के लिए शतचण्डी यज्ञ कराओ; यदि ग्रह अरिष्ट हैं, तो ब्राह्मणों से जप-यज्ञ कराओ; यदि देश पर शत्रु ने हमला कर दिया है, तो ब्राह्मणों से शत्रुंजयी यज्ञ कराओ; यदि रोजगार में घाटा हो, तो ब्राह्मणों से लक्ष्मी प्राप्ति यज्ञ कराओ; यदि संतान नहीं होती है, तो पुत्रेष्टि यज्ञ कराओ; यदि विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी है अथवा देश में राज-विद्रोह हो गया है, तो ब्राह्मणों से शान्ति-पाठ कराओ और यदि विश्व-युद्ध छिड़ गया है, तो ब्राह्मणों द्वारा विश्व-शान्ति-यज्ञ कराओ। यही नहीं, यदि आपके ऊपर छिपकली गिर पड़ी है या छाती पर से चूहा रेंग गया है या सिर पर कौवा बैठ गया है, तो ब्राह्मणों से दोष-मार्जन कराओ। इत्यादि। मतलब यह कि छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सभी कामों के लिए ब्राह्मण की शरण में जाओ, बिना इसके तुम्हारा निस्तार नहीं।

ब्राह्मणों का सबसे बड़ा देवता अग्नि है। ब्राह्मण उदारता या निष्ठुरता के साथ तुम्हारा घी, शकर, अन्न, तिल, मेवा आदि सब 'स्वाहा-स्वाहा' करके आग में फूँक देगा, चकाचक तुम्हारा माल खायेगा, सुवर्ण रजत, और वस्त्र दक्षिणा में लेगा, दूधवाली गाय दान में लेगा, और तुम्हारे मत्थे में लाल टीका लगाकर हाथ में कलावा बाँधेगा और तुम्हें बता देगा, तुम्हारा सब काम सिद्ध हो गया।

अंधविश्वास का कुछ ठिकाना है! एक ओर देश में खाद्य का अभाव है, जनता को आँख में लगाने को घी नहीं मिलता, दूसरी ओर बड़ी-बड़ी यज्ञें हो रही हैं, जिनमें सैकड़ों मन शुद्ध घी, शकर, मेवा, अन्न आदि मनुष्यों का परम खाद्य आग में स्वाहा किया जा रहा है। अभी हाल में सीहोर भावनगर में ३५ लाख रुपये की लागत से एक लक्षचंडी यज्ञ हुआ, और सुना जाता है, बम्बई

के मुनाफाखोर जन-शोषक पूँजीपति करोड़ों रुपया की लागत से एक कोटिचंडी-महायज्ञ की तैयारी कर रहे हैं।

प्रश्न होता है कि इन यज्ञों के प्रभाव से क्या सचमुच विद्रोह महामारी, गरीबी-अमीरी के बीच की खाई, साम्प्रदायिक संघर्ष भाषा-विवाद, चीन व पाकिस्तान द्वारा सीमा-प्रांतीय खतरा, दैवी प्रकोप, अग्नि-भय, बाढ़, सूखा, दुर्भिक्ष आदि सब व्याधियाँ दूर हो जातीं या दूर हो सकती हैं, अथवा यह कोरा अन्ध-विश्वास और पोपों की ठगविद्या है ?

यदि यह सब अन्ध-विश्वास और ब्रह्मजाल-मात्र है, तो इस विज्ञान के युग में इस मिथ्या भ्रमजाल से जनता का पिंड छुड़ाने के लिए उपाय क्यों नहीं किया जाता ? आखिर जनता की आँखें कब खुलेंगी ? उसमें बुद्धि का प्रकाश और स्वतंत्र चेतना कब उत्पन्न होगी ? क्या अज्ञानांधकार से मुक्त करके जनता को सही रास्ते पर लाना कल्याणकारी सरकार का कर्तव्य नहीं है ?

आइए पाठक, हम लोग विचार करें, इस पूजा-पाठ और मिथ्या धर्माभास का क्या असर है और इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई और हो रही है ?

हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का कहना यहाँ तक है कि अगर कोई पुत्र अपने माँ-बाप का पिण्डदान करता है, तो उसके माँ-बाप दूसरी योनि में जन्म नहीं लेते। गंगा-यमुना में उनके फूल बहाने चाहिए और वहीं ब्राह्मणों से पिंडदान कराना चाहिए।

रामायण-पाठ, सत्यनारायण कथा तो हर महीने, और हर सप्ताह, कहीं-न-कहीं होना ही चाहिए ? कभी-कभी एक ही घर में चार-चार प्रकार के पाठ होते देखे जाते हैं। इन सबके कर्त्ता-धर्त्ता ब्राह्मण ही होते हैं।

बच्चे के जन्म से मृत्यु तक उसकी राशि, नक्षत्र, जन्म-कुण्डली, नामकरण, विवाह-मुहूर्त आदि सभी काम ब्राह्मण ही करता

और दान-दक्षिणा लेता है। ब्राह्मण अपनी ऊँच-नीच व्यवस्था के अनुसार नामकरण करता है। ब्राह्मण के बच्चे का नामकरण विद्वत्ता-पूर्ण होता है, क्षत्री के पुत्र का नाम वीरता-द्योतक होना चाहिए, वैश्य के बच्चे का नामकरण धन-सूचक होना चाहिए। किन्तु शूद्रों, हरिजनों के बच्चे के नाम में मूर्खता की बदबू आनी चाहिए। इस भेद-नीति को ब्राह्मण कभी नहीं भूलता।

आर्यों ने अपने दास-दासियों को एक ही पाठ पढ़ाया कि मालिक की सेवा सच्चे दिल से करोगे, तो अगले जन्म में तुम भी ऊँचे वर्ण में जन्म पाओगे।

इतिहास के पन्ने पलटने से पता चल जायगा कि भक्ति-युग का उदय मुसलिम-काल में हुआ। जब हिन्दुओं ने मुसलमानों के सामने घुटने टेक दिये, तो मुसलमानों ने मनमाने ढंग से हिन्दुओं पर अत्याचार किये। गोरख, कबीर, रैदास, दादू, नानक, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास आदि सन्तों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार ईश्वर को पुकारा और हिन्दुओं को ईश्वर पर भरोसा करने की सलाह दी और समझाया कि ईश्वर के दरबार में न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न ब्राह्मण और न शूद्र। सब मनुष्य एक समान हैं।

माननीय मनोजकुमारजी ने जनता के सामने उपकार चल-चित्र रखा है जिसमें दिखाया है कि एक तरफ सभ्य-समाज का पूरन-कुमार खाने-योग्य खाद्य-सामग्री को पैरों तले कुचलता है, दूसरी तरफ असभ्य (गरीब) समाज एक-एक रोटी के टुकड़े और कपड़े को तरसता है। सर्दी, गर्मी, बरसात अपने नग्न शरीर पर ही झेलता रहता है।

हम कभी नहीं सोचते कि गरीब भी भारतीय नागरिक एवं भारतीय समाज के अंग हैं; उन्हें भी वही अधिकार हैं जो टाटा, बिरला, जैन आदि उद्योगपतियों तथा जगतगुरु शंकराचार्य को

हैं। हम केवल अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार हैं। एक कहावत है कि बम्बई का भगवान् ही पैसा है। अर्थात् पैसेवाला ही बम्बई का सब कुछ है।

यहाँ कुछ नित्य-कर्म के श्लोक दे रहा हूँ। इनसे ज्ञात होगा कि ब्राह्मण या उसके निकटवर्ती वर्गों को किस तरह नित्य का कर्म-काण्ड शुरू करना चाहिए।

कराग्रे वसति लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।
कर-मूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर-दर्शनम्॥

इसके बाद भूमि-स्पर्श करके,मुँह धोकर,मल-मूत्र त्यागकर दाँत साफ करते समय दातून-रूपी वनस्पति की प्रार्थना करनी चाहिए।

दशांगुलं तु विप्राणां क्षत्रियाणां नवांगुलः।
अष्टांगुलं तु वैश्यानां शूद्राणां सप्त अंगुलम्॥

ब्राह्मण को दस अंगुल की, क्षत्री को नौ अंगुल की, वैश्य को आठ अंगुल की तथा शूद्र को सात अंगुल की दातून का प्रयोग करना चाहिए।

स्तवराजमियं पुण्यं त्रिकालं यह पठेत् द्विजम्।
पाठे चतुर्णों वेदानां तत्फलं लभते ध्रुवम्॥

जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य गायत्री-देवी का तीन काल में जप करता है, उसे चारो वेदों का फल मिलता है। इसके बाद गायत्री देवी की प्रार्थना करेगा जिसका आशय यह है—

हे गायत्री देवी! जो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य दूध, घी और मधु से तुम्हारी परमात्म-शक्ति की पूजा करते हैं, उन्हें तुम भोग और ऐश्वर्य से पूर्ण करो। अंतःकरण से भक्ति करके जिन-जिन वस्तुओं की इच्छा हो, उन्हें वे निर्विरोध प्राप्त करें।

ब्राह्मणों के किये हुए पापों के समूह को समाप्त करने के लिए जलती हुई अग्नि की शिखाओं के समान ब्रह्मतेज को देनेवाली, सुन्दरी (देवी), तुम प्रसन्न हो।

शरीर, मन, वाणी से ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य जो-जो पाप करते हैं, हे देवी ! आपके मंत्रों के स्मरण मात्र से ही वे पाप धुल जाते हैं।

पापों के धुल जाने का जब ऐसा साधन पास हो, तो फिर निर्भय होकर सब पाप करना चाहिए। पापों से डरने की आवश्यकता नहीं।

महापंडित राहुलजी का कहना है कि राम के सम्पूर्ण आदर्श की रचना एवं रामचरित की कल्पना पुष्यमित्र शुंग की ब्राह्मणी विजय को ध्यान में रखकर बौद्धों के 'दशरथ जातक' को उलट-पलटकर ब्राह्मणों ने अपने शाप के प्रताप का आतंक जमाने के लिए की। देखो 'वोलगा से गंगा'।

जिस राम-कथा का इतना अधिक प्रचार है, उच्च कोटि के विद्वानों की दृष्टि में सारी राम-कथा काल्पनिक है। राम-कथा ऐतिहासिक सत्य नहीं है।

साहित्यिक परीक्षणों से पता लगा है कि संस्कृत-भाषा का प्रयोग आर्य-लोग सर्व-प्रथम मंदिरों मे देव-पूजा के समय करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे सरलता से जनता में संस्कृत का प्रचार हो गया।

संस्कृत-भाषा एक-मात्र धर्म की भाषा बन गई और शंकर से लेकर रामानुज, निम्बार्क, बल्लभ आदि आचार्यों द्वारा सारे देश में फैल गई।

अब्राह्मणों द्वारा लिखे गये तमिल-भाषा के ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में अनुदित किये गये, जिनका उदाहरण नम्मालवार में मिलता है। इसका कहना है कि तमिल-भाषा में लिखे ग्रन्थों को संस्कृत भाषा में उल्था करके उनके नाम भी बदल दिये गये और उन्हें ईश्वर-कृत वेद माना, जबकि यह आर्य-पूर्व की तमिल रचनाएँ थीं। जैसे थिरुविरुदम को ऋग्वेद, थिरुवैमौलि को सामवेद, थिरुवचिरियम को यजुर्वेद तथा पेरिमथिरुवंदरि को अथर्ववेद कर दिया गया।

भारतीय इतिहासकार, पंडित नेहरू की पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इंडिया' का कहना है कि आर्य ३-४ हजार वर्ष पूर्व उत्तरी ध्रुव के किनारे से भारत में आये थे। इनकी सर्वप्रथम आनेवाली टुकड़ी का नेतृत्व मनुजी ने किया था। छोटे बच्चों को पढ़ाया जाता है कि आर्यों के जन्मदाता मनु ही थे। ब्राह्मणों ने समय को युगों में बाँटा। उन्होंने बताया कि पहली टुकड़ी के नेता मनु थे और मनु का विधान चालू हो गया, जो आज मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है। (मनु और नूह को एक ही बताया जाता है)

दूसरी टुकड़ी, जो भारत में आई, उसका नाम द्वापर दिया। इसी तरह त्रेता का नाम दिया, जिसका समय भारतीय हिन्दू साहित्यकार करोड़ों वर्ष बताते हैं। सतयुग को ही ५११२००० वर्ष का मानते हैं, जबकि ऐतिहासिक दृष्टि से वह समय केवल २७४ साल का ही था। इसी प्रकार हर युग की गाथा है।

कलयुग का समय ई० पूर्व १०५० वर्ष से माना गया है, जिसका अंतिम राजा परीक्षित-पुत्र जन्मेजय था। उसके बाद भारत को अनेकों बार हूणों आदि ने लूटा।

इस युग की लीला अकथनीय है। राजा से रंक तक सभी के दिल और दिमाग में एक ही बात भरी थी। किस नगर में किसके यहाँ सुन्दर स्त्री है, कहाँ सुन्दर नशीली शराब मिलती है। कहाँ कौन नगर का राजा दान में स्त्री दे रहा है। सुन्दर स्त्रियों को छीनो, खूब शराब पियो और अन्धाधुन्ध स्त्री-संभोग करो। कहना न होगा कि इस अनाचार से जनता त्राहि-त्राहि करने लगी। क्योंकि सभी की बहू-बेटियों का जीवन और सतीत्व खतरे में था। किसी भी सुन्दरी का सतीत्व सुरक्षित न था। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और देवतागण व्यभिचार में संकोच नहीं करते थे। वशिष्ठ, विश्वामित्र, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु और साक्षात् धर्म देवता भी व्यभिचार से हिचकते न थे।

उदाहरण लीजिए। लोपामुद्रा अगस्त ऋषि की पत्नी थी। उसने खुद बयान किया कि मैंने वशिष्ठ और विश्वामित्र का झगड़ा समाप्त करने के लिए वशिष्ठ को अपने प्रेम में फाँस लिया था।

वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच जो शत्रुता चल रही थी, उसके अनेक कारणों में एक बहुत बड़ा कारण राजा दशरथ के घर में वशिष्ठ का प्रभुत्व भी था। रनिवास के सिवा महासुन्दर वय-किशोर राम वशिष्ठ की सेवा में थे। विश्वामित्र को यह बर्दास्त नहीं था। आखिर मख-रक्षा के बहाने वे राम को अपने आश्रम ले गये और राम विश्वामित्र की सेवा करने लगे। इसके बदले विश्वामित्र ने अपने मित्र राजा जनक की महासुन्दरी बेटी से उनका विवाह करा दिया।

अब हिन्दुओं के भाई-चारे का हाल लीजिए। डा० बेनीप्रसाद लिखित "हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता" पुस्तक पढ़िए। उसमें लिखा है कि—

"राष्ट्रीयता की भावना हिन्दू-समाज में कभी उदय नहीं हुई। हिन्दुत्व का भाव भी मुसलमानों के आने से पूर्व प्रबल न था। सामाजिक झगड़ों ने राजनैतिक झगड़ों के बीच में पड़कर देश को बार-बार नीचा दिखाया। छूत-छात, खान-पान, रीति-रिवाज और सगाई-ब्याह के प्रतिबन्धों का प्रभाव मन पर यही पड़ता है कि देश एक-समाज, एक-राष्ट्र, एक-जनता, एक-धर्म नहीं, अपितु अनेक-समाज, अनेक-राष्ट्र, अनेक-धर्म है। सारे समाज में राष्ट्र-धर्म की सेवा और भक्ति का भाव बहुत कम लोगों के हृदय में जाग्रत होता है। जब कभी हिंदू-समाज पर बाहरी व भीतरी शक्ति से कोई संकट आता है, तब इने-गिने आदमी अपनी हार्दिक प्रेरणा से उसकी रक्षा करते हैं। सामाजिक विच्छेदों के कारण साधारण समय में पूरे समाज की सेवा का भाव निर्बल हो जाता है. सहानुभूति का क्षेत्र संकुचित हो जाता है। हृदय संकीर्ण हो

जाता है। यही हिन्दू-समाज की सबसे ब

जिस प्रकार एक कुटुम्ब के कुटुम्बी
अपनी शक्ति क्षीण करते हैं, उसी तरह हि
उपजाति-गोत्रों और कुलों में बँटकर अप

बाबासाहेब डाक्टर अम्बेडकर की प्र
का उच्छेद' में लिखा है कि "भारत में इ
जातियों के नाम उपलब्ध हैं, जिन्हें अल
अलग नामों से पुकारा जाता है।"

मनुजी ने तो चार ही वर्णों का विधा
वर्णों से चालीस हजार जातियाँ कैसे
बनाया ? उत्तर यही होना चाहिए कि जो ऋषि और राजा हुआ, उसने अपने नाम या गोत्र पर नई जातियों को जन्म दिया।

इन सबकी छोटी-सी प्रतिक्रिया यह है कि "नागा लोगों ने नागालैंड की और पंजाबियों ने पंजाब-प्रांत की स्थापना करा ली, द्रविड़ों ने मद्रास का नाम बदलवाकर 'तामिलनाड' नाम रखवा लिया"। ये सब प्रवृत्तियाँ हिन्दू-धर्म और हिन्दू-राष्ट्र को धर्म-सहिष्णुता का पाठ पढ़ाती हैं। भारतीय नागरिक हिन्दू-धर्म का सहअस्तित्व मानने व उसके साथ रहने को तैयार नहीं। ऐसा क्यों ? इसका जवाब वही नागा विद्रोही, पंजाबी-सिक्ख, मद्रासी-तामिल, द्रविड़ ही दे सकते हैं।

समय की बदलती पुकार हमें आगाह कर देती है कि देश में फैला हुआ वर्ग भेद, रंगभेद और जाति-भेद हमारे राष्ट्र की जड़ों को खोखला कर रहा है ? एक तरफ, विज्ञान के द्वारा मनुष्य चंद्रमा पर जा रहा है, एक तरफ उत्तमोत्तम निर्मित महलों में मनुष्य निवास कर रहा है, वैज्ञानिक साधनों द्वारा प्रत्येक वस्तु को अपने अनुकूल बना रहा है; दूसरी ओर दिखाई देते हैं गरीबों के वे झोपड़े, जिनमें वर्षा का पानी नहीं रुकता, धूप और सर्दी से भी